Yogesh Dewangan

मार्च—2020
वर्ष 84 | अंक 3 | ₹ 19 प्रति | ₹ 220 वार्षिक

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

www.awgp.org

16 शिक्षा-क्षेत्र के कुछ अद्भुत प्रयोग
23 ईश्वर बंद नहीं है मठ में, वह तो व्याप रहा घट-घट में
32 छेड़ो संन्यासी छेड़ो, वह शाश्वत सुमधुर तान
48 कर्म की खेती

पटना (बिहार) में संपन्न 'यूथ एक्सपो-2019' में युवाओं की उत्साहपूर्ण भागीदारी

1 दिसंबर,2019 को इंदौर (म.प्र.) में आशातीत सफलता के साथ संपन्न हुआ
युवा जागरण एवं युवा दंपती शिविर

22 दिसंबर,2019 को मुलताई-बेतूल (म.प्र.) में संपन्न
राष्ट्रजागरण दीपमहायज्ञ एवं युवा संगोष्ठी

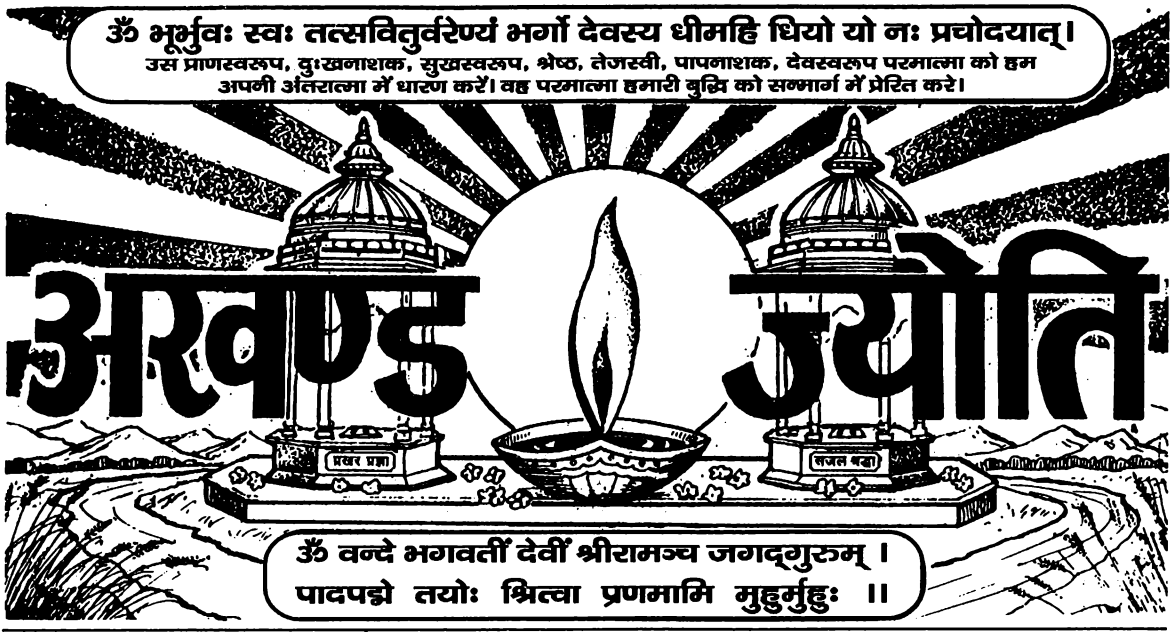

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा

दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं० (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष : 84
अंक : 03
मार्च : 2020
फाल्गुन-चैत्र : 2076-77
प्रकाशन तिथि : 01.02.2020
वार्षिक चंदा
भारत में : 220/-
विदेश में : 1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)
भारत में : 5000/-

जीवन का राजपथ

जीवन के पथ पर हमें सुंदर उपवन भी मिलते हैं और कँटीली झाड़ियाँ भी। सुख के सागर में हम गोते खाते हैं; तो कभी दुःख का तूफान हमें भयभीत करता है; तो कभी वसंत की सुषमा हमें मनोहारी दृश्य दिखाती है; तो कभी पतझड़ का परिवेश, हमारे हृदय को कष्ट देता है। जीवनयात्रा का यह पथ कभी सुरम्य घाटियों से होकर गुजरता है; तो कभी ऊबड़-खाबड़ दुर्गम रास्तों से। दुर्गम रास्तों से गुजरते समय, कभी-कभी पथ को छोटा करने के लिए यात्री छोटी-छोटी पगडंडियाँ बना लेते हैं। इनमें से कुछ पगडंडियाँ तो रास्ते को छोटा करती हैं, पर कुछ मात्र भटकावा बनकर रह जाती हैं।

जीवन-पथ पर भी ऐसी पगडंडियाँ बहुत हैं, जो दिखती तो छोटी हैं और ऐसा आभास भी देती हैं कि वे मार्ग तक पहुँचा देंगी, पर वो कहीं भी पहुँचाती नहीं हैं। दुःख के क्षणों में मनुष्य ऐसी भूल अक्सर कर बैठते हैं, जब वे छोटे व सरल रास्ते के लालच में मुख्य मार्ग को छोड़कर कहीं और की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। जीवन का मुख्य मार्ग, जीवन का राजपथ धर्म का मार्ग ही है। सुख आए अथवा दुःख, इस राजमार्ग को छोड़ने की भूल हमें कभी नहीं करनी चाहिए; क्योंकि अंततः गंतव्य तक पहुँचाने का कार्य मात्र राजपथ ही करता है।

पाप, पतन, अनीति का मार्ग शीघ्र सफलता का स्वप्न जरूर दिखाता है, परंतु पहुँचाता कहीं भी नहीं है। हमारी चाहतें शीघ्रातिशीघ्र पूरी हो जाएँ, इस लालच में लोग धर्म व सदाचार का पथ छोड़कर अपूर्ण महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए निकल जरूर पड़ते हैं, परंतु वो पथ मात्र कीचड़ भरे दलदल में पहुँचाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करता। धर्म का पथ समयसाध्य हो या कर्त्तव्यों से परिपूर्ण—है जीवन का राजमार्ग ही; उस पर चलते हुए जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करना ही श्रेष्ठ है व श्रेयस्कर भी। ❑

▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀

विषय सूची

- जीवन का राजपथ 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  कला की सार्थक अभिव्यक्ति
  आज की सर्वोपरि आवश्यकता 5
- चिर शांति की प्राप्ति का राजमार्ग—आत्मज्ञान 8
- सर्वश्रेष्ठ है ज्ञानदान 10
- **पर्व विशेष**
  आया रंगों का त्योहार 12
- सनातन संस्कृति का पालना—कश्मीर 14
- शिक्षा-क्षेत्र के कुछ अद्‌भुत प्रयोग 16
- जलसंकट की समस्या का कारगर समाधान 19
- इंटरनेट खरीदारी—सही समझ है जरूरी 21
- ईश्वर बंद नहीं है मठ में,
  वह तो व्याप रहा घट-घट में 23
- एकात्म मानववाद 25
- बदलाव माँगती शिक्षापद्धति 27
- भारत के गुफा मंदिरों का
  रोचक एवं विलक्षण संसार 29
- छेड़ो संन्यासी छेड़ो,
  वह शाश्वत सुमधुर तान 32
- जीवनशैली में सुधार से
  तनाव-अवसाद का सहज उपचार 35
- साधनों से नहीं,
  साधना से मिलता है सच्चा सुख 37
- **चेतना की शिखर यात्रा—210**
  शक्तिरूपेण संस्थिता 40
- सम्मिलित प्रयासों से ही बुझेगी यह प्यास 42
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—131**
  कुलाधिपति जी के साहित्य में
  आध्यात्मिक चेतना 44
- असफल प्रयास भी
  साधना के आवश्यक सोपान हैं 46
- कर्म की खेती 48
- **युगगीता—238**
  नाशवान शरीर और अविनाशी आत्मा है
  पुरुषोत्तम का आधार 50
- उदारता—बड़प्पन व परिपक्वता की निशानी 52
- युवाओं का रचनाधर्मी लेखन 53
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—2**
  समग्र जीवन के सुदृढ़ आधार—
  योग एवं तप (उत्तरार्द्ध) 55
- **विश्वविद्यालय परिसर से—177**
  अंतरराष्ट्रीय उपलब्धियों का केंद्र बनता
  देव संस्कृति विश्वविद्यालय 60
- **अपनों से अपनी बात**
  एक घंटा नित्य समय, एक अंश नित्य दान 63
- पावन चैत्र मास (कविता) 66

आवरण पृष्ठ परिचय

ऋषियुग्म के श्रद्धाप्रतीकों को भावभरा नमन

मार्च-अप्रैल, 2020 के पर्व-त्योहार

मंगलवार	03 मार्च	होलाष्टक
शुक्रवार	06 मार्च	आमलकी एकादशी
सोमवार	09 मार्च	होलिका दहन
मंगलवार	10 मार्च	होली
सोमवार	16 मार्च	शीतलाष्टमी
गुरुवार	19 मार्च	पापमोचनी एकादशी
बुधवार	25 मार्च	नवरात्रारंभ/ 'प्रमादी' नवसंवत्सरारंभ
शुक्रवार	27 मार्च	गणगौर
सोमवार	30 मार्च	सूर्य षष्ठी
गुरुवार	02 अप्रैल	श्रीरामनवमी/समर्थ गुरु रामदास जयंती
शनिवार	04 अप्रैल	कामदा एकादशी
सोमवार	06 अप्रैल	महावीर स्वामी जयंती
बुधवार	08 अप्रैल	हनुमान जयंती
मंगलवार	14 अप्रैल	आंबेडकर जयंती
शनिवार	18 अप्रैल	वरूथिनी एकादशी
शनिवार	25 अप्रैल	शिवाजी/ परशुराम जयंती/रमजान
रविवार	26 अप्रैल	अक्षय तृतीया
मंगलवार	28 अप्रैल	आद्यशंकराचार्य जयंती
बुधवार	29 अप्रैल	सूर्य षष्ठी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

कला की सार्थक अभिव्यक्ति आज की सर्वोपरि आवश्यकता

जीवन में संतोष प्राप्त करने के लिए बहुआयामी संभावनाएँ मनुष्य को सदा से प्राप्त रही हैं। जितनी आवश्यकता आजीविका उपार्जन की है, उतनी ही आवश्यकता मनुष्य के लिए मनोरंजन की भी कही जा सकती है। एक मशीन या रोबोट के लिए तो यह संभव है कि वह बिना रुके कार्य करता रहे, परंतु मनुष्य के लिए ऐसा कर पाना संभव नहीं है।

मनुष्य के लिए यह एक अनिवार्य आवश्यकता की तरह से है कि वह मन को, शरीर को तनाव से हलका करने के लिए रह-रहकर कुछ मनोरंजन के कार्यों को, गतिविधियों को भी अंजाम दे अन्यथा एक ही जैसा जीवन जीते रहने से जीवन तनावग्रस्त बन जाता है। ऊब, मन का उचटना इत्यादि अलग से तकलीफ देते हैं। समाज में साप्ताहिक अवकाश का, छुट्टियों का, उत्सवों का निर्धारण किया ही इसलिए गया था कि ऐसी स्थिति का सामना न करना पड़े एवं शरीर व मन के थक पड़ने की स्थिति में कुछ हलका-फुलका कार्य कर पड़ने के बाद फिर से नए उत्साह के साथ कार्य में जुटा जा सके।

सच पूछा जाए तो प्रकृति ने मनुष्य को जो अंग-प्रत्यंग प्रदान किए हैं, उनसे इसी प्रकार दोनों ही तरह के कार्यों को अंजाम दे पाना संभव बन पड़ता है। वही शरीर जो परिश्रम, मेहनत, मशक्कत करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है, उसी शरीर से खेल-कूद, नाचना-गाना, टहलना इत्यादि मनोरंजन के कार्यों को कर पड़ना भी संभव हो जाता है। आँखों से साहित्य को पढ़ने का कार्य भी किया जा सकता है एवं टीवी, सिनेमा इत्यादि मनोरंजन के कार्यों को परिपूर्ण करने का भी।

कहने का तात्पर्य मात्र इतना है कि मानवीय जीवन में कार्यों की आपा-धापी में रह-रहकर कुछ आमोद-प्रमोद का कार्य कर लेने की व्यवस्था प्रकृति ने इसी कारण बनाई है; ताकि जरूरत पड़ने पर शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक तनाव को हलका किया जा सके। पर्यटन, पर्व-त्योहार इत्यादि भी इसी तरह की गतिविधियों को करने के लिए जन्मे सामाजिक उपक्रम हैं।

देश, काल, परिस्थितियाँ बदलने के साथ इस सामाजिक व्यवस्था के स्वरूप बदल अवश्य गए हैं; परंतु उनके उद्देश्य अभी भी वही हैं, जो सदियों पूर्व थे। किसी समय में राजा लोग आखेट इत्यादि पर निकला करते थे तो जनसामान्य गायन, वादन, उत्सव, आयोजन के माध्यम से अपनी मनोदशा परिवर्तित किया करते थे। व्यक्तिगत स्तर पर खेलों के रूप में ताश, शतरंज, चौकड़ी जैसे खेल हुआ करते थे; तो सामूहिक स्तर पर बड़ी प्रतिस्पर्धाएँ जन्म लिया करती थीं।

आज वे ही खेल-आयोजन एशियाड, राष्ट्रमंडल खेलों, ओलंपिक खेलों, विश्वकप जैसी प्रतिस्पर्धाओं में बदल गए हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के हाथ में मोबाइल आ गए हैं, जिन पर गेम्स से लेकर सिनेमा देखने तक की संभावनाएँ विद्यमान हैं। सारांश में इन लोकरंजन के तरीकों के बदलने के साथ-साथ ही यह स्पष्ट है कि इनके उद्देश्य अभी भी यथावत् हैं।

आज की परिस्थितियों में मात्र एक दुःखद आयाम का प्रवेश हुआ है और वह यह कि इन मनोरंजन के प्रयोजनों में अश्लीलता का समावेश हो गया है। धीरे-धीरे करके यह अश्लीलता इस कदर मुख्य धारा में आ चुकी है और लोग भी उसके इस हद तक अभ्यस्त बन चुके हैं कि विनोद और कामुकता, पर्यायवाची शब्द बनकर रह गए हैं। यह मनोविनोद जिसका उद्देश्य मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति, कला की देवी की प्रतिष्ठा, सदाचार के लिए लोगों को प्रेरित करना जैसे श्रेष्ठ संकल्प हुआ करते थे—वे आज अधोगामी प्रवृत्तियों के उपकरण बनते नजर आते हैं।

अकेले अमेरिका की बात करें तो वहाँ प्रत्येक वर्ष 13000 के करीब अश्लील फिल्में बनती हैं, जिनका सालाना कारोबार 13 बिलियन डॉलर तक है। यदि इनकी तुलना मुख्य धारा की हॉलीवुड फिल्मों से की जाए तो यह जानकर अनेकों को आश्चर्य होगा कि वहाँ बन रही सालाना फिल्मों की संख्या औसतन 507 फिल्में हैं, जो साल में औसतन 8 बिलियन डॉलर का भी व्यवसाय नहीं कर पातीं। अकेले अमेरिका में अश्लील फिल्मों का कारोबार राष्ट्रीय फुटबॉल लीग, राष्ट्रीय बॉस्केटबॉल लीग, सीएनएन,

एबीसी टीवी नेटवर्कों के कुल सालाना कारोबार से ज्यादा है। स्पष्ट है कि मनोरंजन का नाम लेकर जो दर्शकों तक पहुँच रहा है, वो कला, विनोद या लोक-मंगल का माध्यम तो कतई नहीं है।

भारतीय परंपरा में मानसिक परिष्कार, आंतरिक उल्लास को जन्म देने के लिए संगीत, साहित्य, कला इत्यादि महत्त्वपूर्ण विधाओं की रचना की गई; ताकि इनके माध्यम से व्यक्ति अपने तनाव को हलका तो कर ही सके, परंतु साथ ही समाज को भी सही दिशा दे पाने का कार्य भी हो सके। आज उन उद्देश्यों को उपेक्षित कर देने से एवं कला के दिव्य प्रयोजन को विकृत कर देने से समाज में कुत्साएँ एवं कुंठाएँ ही भरी हैं।

बच्चों का बचपन और किशोरावस्था का उल्लास-हँसते-हँसाते, खिलखिलाते हुए जीवन में प्रवेश करने का द्वार है। बाद में तो जीवन तनाव में बदल ही जाता है, इसीलिए प्रकृति ने प्रारंभ से ही यह व्यवस्था मनुष्य को दी कि हँसते हुए जीवनयात्रा में प्रवेश किया जा सके। आज कला के नाम पर परोसी जा रही कामुकता के कारण युवा, किशोर, बच्चे—सभी आत्महीनता, व्यसनों, उन्माद, पतनोन्मुख प्रवृत्तियों के शिकार बनते नजर आते हैं।

मनोविनोद के लिए जो गतिविधियाँ की जानी चाहिए थीं, वो धीरे-धीरे विकृत होती हुई एक ऐसी अवस्था तक पहुँच जाती हैं; जहाँ सारा जीवन ही कुमार्गगामी हो जाता है एवं दुर्व्यसनों का बोलबाला बढ़ जाता है। उनकी पूर्ति के लिए व्यक्ति को कुपथ का अनुगामी बनना पड़ता है। जुआ, चोरी, अपराध, हिंसा जैसे कृत्य घटते नजर आते हैं। यदि ऐसी ही प्रकृति के कई लोग एक जगह इकट्ठे हो गए तो फिर वे गिरोह तक बना लेते हैं।

यदि वैसी प्रवृत्तियाँ लंबे समय तक जीवनशैली का हिस्सा बनी रहीं तो इन्हीं को एक बड़ा आपराधिक गैंग बनाने से फिर कौन रोक सकता है? आज की परिस्थितियों में ऐसा नहीं है कि मात्र लड़कों तक या किशोरों तक ये दुर्व्यसन सीमित रह गए हों। बालिकाएँ व लड़कियाँ भी फैशन का चस्का लग जाने के बाद इस पथ पर खुलेआम चलती व अपना जीवन तबाह करती दिखाई पड़ती हैं।

व्यक्तिगत व सामाजिक पतन को शुरू में ही रोका जा सकता था; यदि उसी समय उनकी आंतरिक कला को अभिव्यक्त करने का या अभिव्यक्त होने का अवसर प्रदान किया जाता। वातावरण की विषाक्तता तो अवश्य इस बात के लिए जिम्मेदार है; परंतु साथ ही कला की अभिव्यक्ति के लिए समुचित अवसर का न मिल पाना भी इस कुंठा के पनपने के पीछे का एक महत्त्वपूर्ण कारण है, जो धीरे-धीरे विकृतियों के रूप में पनपता दिखाई पड़ता है।

सामान्यतया हर व्यक्ति के जीवन में कुछ बनने की, कुछ कर गुजरने की एक ललक विद्यमान रहती है, इसे भी जीवन की एक आवश्यकता की तरह ही गिना जाना चाहिए। इसीलिए स्वास्थ्य, शिक्षा, आजीविका उपार्जन की तरह कला की अभिव्यक्ति व मनोविनोद को भी मानवीय जीवन का एक अभिन्न अंग माना जाना चाहिए।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आवश्यकता इस बात की हो जाती है कि जनजीवन में कला के समग्र और सौंदर्यपूर्ण स्वरूप को सुनियोजित एवं शालीन ढंग से पुनः समाविष्ट होने का अवसर प्रदान किया जाए। यदि कला को विस्तृत होने का, नए फलकों को छूने का अवसर मिल सका एवं वर्तमान पीढ़ी को उनके अंदर निहित ऊर्जा की सकारात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम मिल सका तो जीवन को प्रमुदित-उल्लसित होते देर नहीं लगने वाली है। वर्तमान समस्याएँ फिर ऐसी विदा होती नजर आएँगी मानो वे कभी थी ही नहीं।

क्रीड़ा-प्रतियोगिताओं का आयोजन, खेल-कूद का माहौल भी इसी क्रम में जुड़ जाते हैं। इनको दैनिक दिनचर्या में समाविष्ट करने से स्वास्थ्य-संवर्द्धन और पराक्रम के उभरने का मौका मिलता है। साथ ही कला-प्रतियोगिताएँ भी यदि आयोजित होने लगें; तो संपूर्ण वातावरण उल्लास से भर जाएगा। सच पूछा जाए तो कला मात्र विनोद का माध्यम नहीं है, वरन उसमें मानवीय अंतःकरण में सद्भावनाओं को उभारने तथा सत्प्रवृत्तियों को और बलिष्ठ बनाने की उच्चस्तरीय क्षमताएँ विद्यमान हैं। आवश्यकता मात्र इन संभावनाओं के सम्यक सुनियोजन की हो जाती है। दुरुपयोग तो अमृत को भी विष बना देता है और सदुपयोग से कंकड़-पत्थर भी कंचनतुल्य हो जाते हैं।

आज व्यक्तिगत और सामाजिक प्रगति के एक बड़े आयाम के रूप में कला-क्षेत्र के विकास की बात सोचने की आवश्यकता है। यह भी जरूरी है कि ऐसे प्रयत्न मात्र कुछ लोगों तक सीमित होकर न रह जाएँ; बल्कि सर्वसुलभ बनें। व्यायामशालाओं की स्थापना, स्वस्थ प्रतिस्पर्धाओं की

शुरुआत इत्यादि क्रम तो छोटे-छोटे स्थानों पर बिना ज्यादा आर्थिक भार उठाए सहजता से किए ही जा सकते हैं।

कला का स्वरूप मात्र नृत्य, गायन, वादन तक ही सीमित नहीं है; बल्कि इसका उद्देश्य प्रतिभा का सुरुचिपूर्ण प्रस्तुतीकरण करना है। घरों में पुष्प वाटिकाएँ लगाकर, घरेलू शाक वाटिकाएँ लगाकर, गृह उद्योग स्थापित कर घरों में कीर्तन, गीत, आरती जैसे सहज व बिना खरच के आयोजन करके भी कला को अभिव्यक्ति प्रदान की जा सकती है। तरीके कुछ भी अपनाए जाएँ; पर यदि उद्देश्य उत्कृष्ट हों एवं भावनाएँ पवित्र हों तो इन्हीं सरल-सहज तरीकों के माध्यम से ही दुष्प्रवृत्तियों को, सत्प्रवृत्तियों में—सद्भावनाओं में बदलते देर नहीं लगेगी। इस प्रयोजन के लिए हमें मात्र सोचना ही नहीं; बल्कि कुछ उद्देश्यपूर्ण करना भी चाहिए। ❑

एक विदेशी मेहमान द्वारा परीक्षा हेतु एक विशेष राग सुनाए जाने की प्रार्थना पर महाराज कृष्णराज ओडियार ने अपने संगीतकारों को वह चुनौती दी। सबको मौन देखकर उसी समय वहाँ पधारे सुविख्यात संगीतज्ञ चिकरामप्पा को संबोधित करते हुए उन्होंने व्यंग्य बाण फेंका—''क्या हमारे संगीतज्ञों को कंगन और सिंदूर बाँटा जाए?''

महाराज की यह व्यंग्योक्ति सुनकर संगीतज्ञ का स्वाभिमान जाग उठा। उन्होंने धीर-गंभीर स्वर में उनकी चुनौती स्वीकार करते हुए कहा—''महाराज! इस राग के गाने के लिए बड़ों की क्या आवश्यकता? मेरा सात साल का शेषण्णा गाएगा।'' संगीत की लहरियों के वातावरण में विकसित होने वाले इस पुष्प पादप को उसके कलाकार पिता ने अपने हाथों तीन वर्ष की आयु में ही दीक्षित कर दिया था।

बालक शेषण्णा गाने लगा। सधा हुआ कंठ स्वर, मुग्ध कर देने वाली रसयुक्त स्वरलहरी वातावरण में तैरने लगी। सभी श्रोता चकित से इस बाल कलाकार की कला-साधना पर चकित हो उठे। एक संगीतमय मनोरम वातावरण का निर्माण वहाँ हो गया। संगीत की समाप्ति पर महाराज अपने आसन से उठे और बालक को अपनी भुजाओं पर उठा लिया। उसे सिंहासन पर अपनी गोद में बैठाकर मूल्यवान शाल के उपहार के साथ-साथ शुभाशीष देते हुए बोले—''हमारी सभा के गौरव की रक्षा करने वाला यह बालक अपने जीवन में यशस्वी संगीतज्ञ बने।'' कृष्णराज ओडियार की यह शुभकामना साकार होकर रही। यही बालक आगे चलकर प्रसिद्ध गायक बना। बाल्यकाल में मिले शिक्षण ने ही बालक को इस ऊँची स्थिति में पहुँचाया।

चिर शांति की प्राप्ति का राजमार्ग—आत्मज्ञान

संसार में, इस जीवन में करने के लिए, जानने के लिए बहुत सारी चीजें हैं; जिन्हें हर व्यक्ति अपनी रुचि व आवश्यकता के अनुसार करता है—कुछ होशोहवास में, तो कुछ बेहोशी में। सब कुछ करने के बाद, संसार-समाज को जानने के बाद भी अंतस् में एक कचोट बनी रहती है, एक खालीपन, एक रिक्तता बनी रहती है, जिसके केंद्र में होता है—अपने ही प्रति अनभिज्ञता का भाव, अपने जीवन के प्रति सही समझ का अभाव।

इसीलिए मानव चेतना के मर्मज्ञ ऋषियों ने कहा कि जीवन का प्रथम उद्देश्य एवं कर्त्तव्य है—स्वयं को जानना। उपनिषदों में **आत्मानं विद्धि** का उपदेश दिया गया, तो पश्चिमी परंपरा में नो दाई सेल्फ (स्वयं को जानो) का संदेश गूँजा। श्रीमद्भगवद्गीता में विषादग्रस्त अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण सबसे पहले आत्मतत्त्व का ही बोध कराते हैं व स्वयं के दैवीय आधार से परिचय कराते हैं। उसके बाद वे स्वधर्म की बात करते हैं। निश्चित रूप से व्यक्ति का पहला कर्त्तव्य स्वयं को जानना, समझना व इस दिशा में नित्य, अहर्निश प्रयास करना है।

अधिकांश लोगों को यह शिकायत रहती है कि अपने लिए समय ही नहीं मिल पाता। जीवन की भाग-दौड़, नौकरी-व्यवसाय, लोकसेवा-संसार व्यापार के बीच व्यक्ति कुछ इस कदर मशगूल रहता है कि वह उसमें पूरी तरह से खप जाता है। संसार के प्रति यह घोर अनुराग, अपने कर्मों के प्रति घोर आसक्ति व्यक्ति को स्वयं से अनभिज्ञ रखते हैं। ऐसे में व्यक्ति दुनियाभर के विषयों का जानकार, मर्मज्ञ, विशेषज्ञ, एक्सपर्ट तो बनता जाता है, लेकिन अपने बारे में अनपढ़ एवं अज्ञानी ही बना रहता है।

अपने प्रति यही नादानी व्यक्ति पर भारी पड़ती है। व्यक्ति बाहरी उपलब्धियों के शिखरों पर चढ़ता जाता है, लेकिन सफलता के साथ वह उस संतुष्टि एवं सार्थकता का एहसास नहीं कर पाता, जिनकी वह आशा-अपेक्षा लगाए बैठा होता है। मृगतृष्णा की भाँति वह जीवन के रेगिस्तान में जल की तलाश में भटकता फिरता है। उसे हर सुख व सांसारिक उपलब्धि में जल का भ्रम होता है, लेकिन हर खोज के अंत में उसे क्षणिक तृप्ति ही हाथ लगती है। उसकी अंतरात्मा अतृप्त ही रह जाती है, उसका खालीपन यथावत् ही बना रहता है।

वह यह नहीं जान पाता कि अंदर के खालीपन के समाधान के सूत्र तो अंदर ही भरे पड़े थे। हमारी मूल सत्ता ही सत्-चित्-आनंद स्वरूप है। स्थायी सुख, शांति का वास्तविक स्रोत तो हमारे अंदर ही छिपा पड़ा है। अपने इस मूल स्वरूप की खोज ही अध्यात्म विद्या है, जिसे अपनाने पर हमें 'स्व' से परिचय मिलना प्रारंभ होता है, अपने अस्तित्व का बोध होता है; जिसके माहात्म्य से हमारे शास्त्रों के पन्ने भरे पड़े हैं। **येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्**—उपनिषदों का यह कथन शाश्वत है, सार्वकालिक है, सार्वभौमिक है और सच्चे सुख, संतोष एवं आनंद की खोज में भटक रहे राहियों के लिए पथप्रदर्शक है।

ऐसे कितने ही महापुरुषों के उदाहरण भरे पड़े हैं, जिन्होंने इस पथ के अनुगामी होकर पहले स्वयं को जाना, फिर संसार-समाज एवं युग को प्रकाशित किया व युग-समस्याओं का समाधान दिया। जब राजकुमार सिद्धार्थ को जीवन दुःखस्वरूप समझ आया तो वे इसके आत्यांतिक समाधान में जीवन की पहेली को सुलझाने अपना सारा राजपाट त्यागकर निकल पड़े और स्वयं को पाकर उन्होंने फिर जीवन-विद्या का अष्टांगमार्ग दिया।

इसी तरह राजकुमार महावीर अपना राजपाट पीछे छोड़कर आत्मज्ञान के पथ पर निकल पड़े और कैवल्यज्ञान के रूप में मानवता को जीवन-विद्या का शिक्षण दिया। राजा भर्तृहरि इसी खोज में अपना राजपाट भाई विक्रमादित्य को सौंपकर स्वयं को जानने के लिए आत्मानुसंधान की प्रक्रिया में जुटे व जीवन के समग्र दर्शन की अनमोल निधि देकर गए।

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में उस एक तत्त्व को पाने की चेष्टा जीवन का सर्वोच्च आदर्श रहा है, जिसको पाने के बाद फिर कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। यह एक तत्त्व हृदयगुहा में निहित, अंतरात्मा के केंद्र में स्थित दैवी

तत्त्व है, कण-कण व्यापी ईश्वरीय सत्ता का दिव्य अंश है, जो अपने मूल रूप में वही सब गुण लिए हुए है। **सोऽहम्, शिवोऽहम्, सच्चिदानंदोऽहम्, तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म**—जैसे महावाक्यों में यही सत्य प्रतिध्वनित होता है। वस्तुत: आत्मज्ञान ही सांसारिक ज्ञान की सार्थकता का आधार है व आत्मज्ञान के बिना सांसारिक ज्ञान भारतीय परंपरा में अधूरा माना जाता रहा है।

आश्चर्य नहीं कि युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव की प्रथम पुस्तक '**मैं क्या हूँ**' (1938) में इसी विषय को विस्तार से प्रकाशित किया गया है। आचार्यश्री इसकी भूमिका में लिखते हैं कि इस संसार में जानने योग्य अनेक बातें हैं। विद्या के अनेक सूत्र हैं, खोज के लिए, जानकारी प्राप्त करने के लिए अपरिमित मार्ग हैं। जानकारी की अनेक वस्तुओं में से अपने आप की जानकारी सर्वोपरि है। हम बाहरी अनेक बातों को जानते हैं या जानने का प्रयत्न करते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि हम स्वयं क्या हैं? अपने आप का ज्ञान प्राप्त किए बिना जीवन क्रम बड़ा डाँवाडोल, अनिश्चित और कंटकाकीर्ण हो जाता है। अपने वास्तविक स्वरूप की जानकारी न होने के कारण मनुष्य न सोचने लायक बातें सोचता है और न करने लायक कार्य करता है। सच्ची सुख-शांति का राजमार्ग एक ही है, और वह है —आत्मज्ञान।

'**मैं क्या हूँ**' पुस्तक में परमपूज्य गुरुदेव ने आत्मज्ञान के पथ को साधना द्वारा हृदयंगम कराने का प्रयत्न किया है और यह पुस्तक अध्यात्म मार्ग के पथिकों के लिए उपयोगी मार्गदर्शन प्रदान करती है। यह पुस्तक साधकों में बोध जगाती है कि आप शरीर नहीं हो, जीव नहीं हो, वरन ईश्वर हो। शरीर की, मन की जितनी भी महान शक्तियाँ हैं, वे आपके औजार हैं। इंद्रियों के आप गुलाम नहीं हो, आदतें आपको मजबूर नहीं कर सकतीं, मानसिक विकारों का कोई अस्तित्व नहीं, अपने को और अपने वस्त्रों को ठीक तरह से पहचान लो। फिर जीवन का स्वाभाविक धर्म उनका ठीक उपयोग करने लगेगा। भ्रमरहित और तत्त्वदर्शी बुद्धि से हर काम कुशलतापूर्वक किया जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार, इसी पृष्ठभूमि में वह योग सधता है, जिसकी व्याख्या भगवान श्रीकृष्ण गीता में—**योग: कर्मसु कौशलम्** के रूप में करते हैं। इसी कर्म कौशल के आधार पर व्यक्ति लौकिक और पारलौकिक कार्यों में अपना उचित स्थान प्राप्त करते हुए समग्र एवं सार्थक सफलता के मार्ग पर बढ़ता है व इस जीवन के परम उद्देश्य को सिद्ध करता है। अत: प्रश्न एक ही है कि हम आत्मज्ञान की दिशा में कितने सजग-सचेष्ट हैं व नित्यप्रति इस संदर्भ में हमारी न्यूनतम साधना का पथ कितना स्पष्ट एवं तय है। ❑

परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए उपनिषद्कार ने एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया है—*'तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्'* अर्थात उसे जानने के लिए जिज्ञासु व्यक्ति गुरु के पास जाए।

कैसे? उसी सूत्र में संकेत है—*'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'* गुरु के पास हाथ में समिधा लेकर, शिष्टभाव से, नम्रभाव से जाए।

भाव है—'समिधा अग्नि पकड़ती है। गुरु के पास ज्ञानज्योति है। साधना समिधा जैसी पात्रता लेकर जाए।'

कैसे गुरु के पास? जो श्रोत्रिय अर्थात ज्ञान से श्रुतियों का ज्ञाता हो, उनका तत्त्व समझता हो और ब्रह्मनिष्ठम् अर्थात आचरण से ब्रह्मनिष्ठ हो। ब्रह्म-अनुशासन को समझता भी हो और उसका पालन करने की निष्ठा, क्षमता भी रखता हो। ऐसा संयोग जहाँ बनेगा, परमात्मतत्त्व की प्राप्ति अवश्य होगी।

सर्वश्रेष्ठ है ज्ञानदान

बात वर्षों पुरानी है। बंगाल के हुगली नदी के किनारे बसे एक गाँव में पं0 दामोदर शास्त्री रहते थे। उनके परिवार में पत्नी के अलावा दो पुत्र और एक पुत्री थे। पुत्री की शादी हो चुकी थी। शास्त्री जी जगह-जगह भागवत कथा कहा करते थे। कथा से उन्हें अच्छी आमदनी हो जाया करती थी। परंतु कहते हैं कि लालच का कोई अंत नहीं होता, लालच बुरी बलाय। जैसे-जैसे शास्त्री जी की आमदनी बढ़ती गई, वैसे-वैसे उनका लालच भी बढ़ता गया। वे एक तरफ कथा कराने के बदले मनमानी रकम वसूलने लगे, तो वहीं दूसरी ओर वे ऊँचे ब्याज पर गरीबों को पैसे देते और उनसे खूब पैसे ऐंठते। इस प्रकार उन्होंने गाँव एवं शहर में काफी अचल संपत्ति बना ली।

कहते हैं कि बुरे कर्म का नतीजा अक्सर बुरा ही होता है। सो पंडित जी के साथ भी ऐसा ही हुआ। गलत तरीके से अर्जित पैसे से उन्होंने धन-संपत्ति तो बना ली; पर अनुचित तरीके से कमाए पैसे पाकर उनके दोनों पुत्र जुआरी और शराबी बन गए। दोनों पुत्रों ने पढ़ाई भी छोड़ दी। घर में पैसे तो आते रहे, पर परिवार में संस्कार और सुसंस्कारिता का वातावरण नहीं रहा। घर में रह-रहकर क्लेश होने लगे। पंडित जी कथा वाचने का काम करते रहे; पर अब धीरे-धीरे उन्हें अपनी गलती का एहसास होने लगा।

उन्हें यह एहसास होने लगा कि उन्होंने गलत तरीके से पैसे कमाए, गरीबों को सताया, भागवत कथा के लिए मनमानी रकम वसूली और उनके इन्हीं कुकृत्यों के कारण आज उनके परिवार का बुरा हाल था। जो संपत्ति उन्होंने अर्जित की थी—उसे उनके जुआरी और शराबी पुत्रों ने बेचना और बरबाद करना शुरू कर दिया। कहते हैं कि जो धन हम दूसरों को रुलाकर अर्जित करते हैं, वो धन एक-न-एक दिन हमें भी रुलाकर ही समाप्त हो जाता है। पंडित जी को अपनी करनी पर भारी पश्चात्ताप हुआ। वे भागवत कथा में लोगों को भागवत प्रेम व आदर्श जीवन व मानव जीवन की गरिमा, सेवा, संयम, सदाचार आदि की ऊँची-ऊँची बातें कहा करते थे और दूसरों को उपदेश दिया करते थे; पर उनके स्वयं के जीवन में इन ऊँचे आदर्शों के लिए कोई जगह नहीं थी।

जो लोग पंडित जी को पहले बड़े सम्मान व श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, वे भी अब उनका निरादर और तिरस्कार करने लगे। पंडित जी को अब मन-ही-मन भारी ग्लानि होने लगी। अस्तु वे प्रायश्चित के लिए तीर्थयात्रा को निकल पड़े। महीनों पैदल चलकर वे प्रयाग, बनारस होते हुए हरिद्वार पहुँचे। हरिद्वार में कुछ दिनों तक तीर्थसेवन करने के पश्चात वे तप करने की प्रेरणा से हिमालय की ओर चल पड़े। महीनों की यात्रा के बाद वे अंततः हिमालय क्षेत्र में प्रवेश कर पाए। रात्रि का समय था। हड्डियों को गला देने वाली तेज ठंढी हवाएँ चल रही थीं। पिछले दो दिनों से उन्हें कुछ खाने को भी नहीं मिला था। उन्हें अब लगने लगा कि उनका जीना व्यर्थ है। रह-रहकर उनके अपने कर्म उनसे सवाल करते और वे उन प्रश्नों के उत्तर देने में स्वयं को निरुत्तर पाते।

अंत में रात्रि के मध्य पहर में उन्होंने पर्वत की कुछ चढ़ाई की और फिर वहीं से कूदकर आत्महत्या करने की सोचने लगे। उन्होंने जैसे ही छलाँग लगानी चाही, वैसे ही उन्हें किसी अज्ञात शक्ति ने रोक दिया। आत्महत्या किसी समस्या का समाधान नहीं है पुत्र! और आत्महत्या करना ईश्वर की नजर में एक बड़ा पाप भी है। उन्हें लगा जैसे कोई पीछे से उनसे ऐसी बातें कर रहा है। वे पीछे मुड़े, देखा सामने एक संन्यासी खड़े हैं। उन्हें देखकर पंडित जी समझ गए कि ये निश्चित ही हिमालय में तप करने वाले कोई महान तपस्वी हैं।

पंडित जी की आँखों में जल भर आया। वे उन महात्मा के चरणों में मस्तक रखकर बिलख-बिलखकर रो पड़े और बोले—"महात्मन्! मैं जीना नहीं चाहता। मैं अब घर भी नहीं जाना चाहता। या तो आप मुझे अपनी शरण में लेकर अपना शिष्य बना लें अथवा मैं अपनी जीवनलीला

समाप्त कर लूँगा।'' उन महात्मा ने कहा—''पुत्र! भावावेश में कोई कदम उठाना अच्छी बात नहीं है। तुम्हें यदि सचमुच प्रायश्चित करना है तो अब तुम पवित्र जीवन जीने का संकल्प लो। जो जीवन तुम जी रहे थे, वास्तव में वह पशुवत् जीवन था। यह दुर्लभ मानव तन परमात्मा को पाने के लिए मिलता है।''

उन अज्ञात महात्मा ने उन्हें अपनी गुफा में ले जाकर सांत्वना दी। कुछ कंद-मूल खाने को दिए। वहीं उन्होंने रात्रि-विश्राम किया। हिमालय के दिव्य वातावरण को देखकर पंडित जी अभिभूत थे। अब वे भी वहीं रहकर तपस्या करना चाहते थे; पर महात्मा जी ने कहा—''पुत्र! तुम अभी वापस घर लौट जाओ। अभी तुम्हारे ऊपर परिवार की जिम्मेदारी है। देखो! तुम्हारी पत्नी और तुम्हारे बच्चों का हाल बड़ा बुरा है। वे सब तुम्हें जगह-जगह ढूँढ़ रहे हैं। जाओ, घर लौट जाओ। मैं तुम्हें तुम्हारे परिवार की एक झलक अभी दिखाए देता हूँ। तुम जरा अपनी आँखें बंद कर लो।'' उन तपस्वी महात्मा ने उनके सिर पर हाथ रखा और अपने तपोबल से पंडित जी को उनके परिवार की एक झलक दिखाई।

पंडित जी ने देखा—सचमुच उनके परिवार के लोग उनके लिए काफी परेशान हैं। उनकी पुत्री पिता के लिए विलाप कर रही है, उनकी पत्नी रो रही है। महात्मा के समझाने पर पंडित जी घर लौटने को तैयार हुए। उन तपस्वी महात्मा ने उन्हें कुछ मंत्र दिए और घर पर नियमित संध्यावंदन करने को कहा। साथ ही उन्होंने यह सलाह भी दी—''पुत्र! भागवत कथा करना अच्छी बात है, इससे लोगों को सत्प्रेरणा मिलती है, भगवान के प्रति प्रीति बढ़ती है; पर पुत्र एक बात याद रखना ज्ञान बेचने के लिए नहीं, बाँटने के लिए है। ज्ञान का दान ही सर्वश्रेष्ठ दान है; क्योंकि ज्ञान पाकर व्यक्ति अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसलिए अब तुम निस्स्वार्थ भाव से लोगों के बीच जाकर भागवत कथा, संकीर्तन करो। इससे तुम्हें पुण्य मिलेगा और परमेश्वर का प्यार भी।''

उन महात्मा की ऐसी सत्प्रेरणा पाकर पंडित जी घर लौटे। अब वे नित्य त्रिकाल संध्यावंदन करते, नित्य यज्ञ करते, लोगों के बीच जाकर भागवत कथा करते और दक्षिणास्वरूप जो भी मिल जाता, उसी से अपना जीवनयापन करते। घर में कलह, क्लेश की जगह प्रेम, सहिष्णुता, सदाचार व संस्कारपूर्ण वातावरण बनने लगा। उनके दोनों पुत्रों की शादियाँ हुईं और वे भी अपना कारोबार करने लगे। दूर-दूर तक पंडित जी की भागवत कथा और उनके सदाचार की चर्चा होने लगी। अब पंडित जी सचमुच भागवत कथा का मर्म समझ चुके थे और उन प्रेरणाओं को, आदर्शों को, जो वे दूसरों को बताते थे—स्वयं के जीवन में भी जीने लगे। ❑

त्रिचनापल्ली का एक छात्र विद्यालय में प्रवेश लेने गया। नियमानुसार उसकी परीक्षा ली गई। योग्यता देखकर अध्यापक ने सिफारिश की इस विद्यार्थी की बुद्धि और विद्या इतनी प्रखर है कि उसे कॉलेज में दाखिला मिलना चाहिए। हाईस्कूल के प्राध्यापक ने लड़के को बुलाया और उस सलाह से अवगत कराया।

विद्यार्थी ने जवाब दिया—''मास्टर साहब! परीक्षा में अधिक अंक पाने का यह अर्थ नहीं कि जो एक क्रम व्यवस्था बनी है, उसे तोड़ा जाए। एक-एक सीढ़ी पर चढ़ते हुए ही उन्नति के अंतिम बिंदु तक पहुँचा जा सकता है तो फिर मैं ही बीच से छलाँग क्यों लगाऊँ?''

स्वल्प श्रम से मिलने वाली सफलता को ठुकरा देने वाले इस छात्र को आज सभी चंद्रशेखर वेंकटरमन के नाम से जानते हैं, जिन्हें वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर नोबुल प्राइज मिला। यह विनम्रता-निरहंकारिता ही उच्चस्तरीय उपलब्धियों की पृष्ठभूमि बनाती है।

पर्व विशेष

आया रंगों का त्योहार

हमारे देश में होली मात्र रंग खेलने की परंपरा नहीं है; बल्कि यह उद्घोष है ऋतु-परिवर्तन के साथ सदियों की परंपरा का, जहाँ त्योहार बड़ों के चरणस्पर्श, देवदर्शन और छोटों के प्रति स्नेहाशीष के साथ पूर्ण होता है। होली उन छोटे कसबों का बेफिक्र, मनभावन और उल्लास से भरा हुआ उत्सव है, जो अब विश्व के लगभग हर देश में बसे हुए हिंदुओं द्वारा उसी उत्साह से मनाया जाता है, जैसे वे अपने ही देश में रह रहे हों।

होली में विशेष रूप से याद आती है—बरसाने की लट्ठमार होली, पूरी दुनिया में इस होली की प्रसिद्धि है और इसे देखने के लिए लोग दूर-दूर से बरसाना आते हैं। होली एक तरह से मन का त्योहार है और वैसे भी जब भी मन प्रफुल्लित होता है, तब हर क्षण फाल्गुन और हर दिन होली का उत्सव मन मनाता है। अपनों के बीच एकाकीपन, चिड़चिड़ाहट, गुस्सा, अवसाद जैसे इमोशन इस पर्व में जाने कहाँ पानी में घुल जाते हैं।

होली के समय मौसम भी सुहाना हो जाता है। सूरज की उष्णता, भक्त प्रह्लाद का पुनर्स्मरण और मधुरिम लोकगीतों पर मग्न हुरिहारों की मस्ती हृदय में उन कोमल भावों को जाग्रत करती है, जो हमारे सारे अहंकार को त्यागकर स्वजनों को रंगों से सराबोर कर ही देती है। इंद्रधनुषी विविध रंगों की बौछार न सिर्फ हमारे तन को रंगीला करती है; बल्कि हृदय से आत्मा को भी जोड़ती है।

होली में खुशियाँ बाँटने और रिश्तों में मिठास घोलने के लिए एकदूसरे को रंग लगाने के साथ-साथ भाँति-भाँति के पकवानों, व्यंजनों व पेय पदार्थों का स्वाद लेने का भी आनंद आता है। लोग बड़े उल्लास से कई दिन पहले से ही होली के त्योहार पर विशेष तरह के पकवान व व्यंजन बनाने के लिए तैयारियाँ करने लगते हैं, त्योहार पर इन्हें प्रसन्न मन से बनाते हैं, जिसका आनंद ही कुछ और होता है और अपनी खुशियाँ व्यक्त करने के लिए वे अपने परिजनों को इन्हें वितरित करते हैं, विशेष रूप से गुजिया व ठंढाई इस त्योहार में अत्यधिक पसंद की जाती हैं, लेकिन अलग-अलग क्षेत्रों में इस त्योहार पर विशेष तरह के व्यंजन बनाए जाते हैं।

होली में रंग खेलने, एकदूसरे को रंग लगाने का जो रिवाज है, उसके पीछे भाव यह है कि लोग रंगों के महत्त्व को भी समझें, जब सभी लोग विविध रंगों में रँगकर अपनी पहचान खो देते हैं और सभी एकसमान प्रतीत होते हैं, तो यह दृश्य यह बतलाता है कि हम मनुष्य भले ही समाज में जात-पाँत, ऊँच-नीच, कुल-धर्म, समानता-असमानता, रंग-भेद आदि से मनुष्यों के बीच दीवारें खड़ी कर लेते हैं, लेकिन वास्तव में हम सभी इन सबसे ऊपर मनुष्य ही हैं; परमात्मा की दृष्टि में हममें कोई भेदभाव नहीं है, हम सभी में उसी परमात्मा का अंशरूप जीवात्मा मौजूद है। भिन्नता है तो सिर्फ हमारे कर्मों में, मनोवृत्तियों में, दृष्टिकोण व सोच में। यदि इन सब में भी परिष्कृति आ जाए तो हम मनुष्य किसी देव से कम नहीं हैं।

रंगों की अपनी सौंदर्यता होती है, रंगों में एक आकर्षण होता है और रंग व्यक्ति के ऊपर भी अपना प्रभाव डालते हैं। होली में जो रंग खेलने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं, यदि उनमें रासायनिक तत्त्वों का इस्तेमाल है, तो वे हमारे लिए लाभकारी नहीं, अपितु नुकसानदेय हैं; क्योंकि जब ये रंग हमारे सिर पर, त्वचा पर, नासिका, मुँह, आँख, कान व नाखूनों पर पड़ते हैं, तो ये हमारे शरीर के अत्यंत सूक्ष्मछिद्रों के माध्यम से शरीर के अंदर भी प्रवेश कर जाते हैं और शरीर के संवेदनशील अंगों पर अपना बुरा प्रभाव डालते हैं। इसके विपरीत यदि हम प्राकृतिक रूप से बने हुए रंगों का प्रयोग करें तो ये हमारे लिए अत्यंत लाभदायी होंगे और होली के त्योहार के आनंद को भी कई गुना बढ़ा देंगे।

होली के प्राकृतिक रंगों को हम अपने घर पर भी आसानी से तैयार कर सकते हैं, उदाहरण के लिए—हरा रंग बनाने के लिए हम मेहँदी पाउडर का इस्तेमाल कर सकते हैं, वैसे भी बालों को रँगने के लिए मेहँदी का इस्तेमाल किया जाता है और इससे बाल भी स्वस्थ व चमकदार होते हैं। हरे रंग के लिए मेहँदी को आटे के साथ मिलाकर सूखा

हरा रंग तैयार किया जा सकता है, यदि रंग को पक्का करना है तो इसे पानी में घोला जा सकता है।

पीला रंग बनाने के लिए हलदी व बेसन का प्रयोग किया जा सकता है। इसमें जितनी हलदी की मात्रा ली जाए, इससे दुगनी मात्रा में बेसन मिलाया जाए। आमतौर पर इसे घरों में उबटन के लिए भी प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा इसमें हलदी के साथ मुलतानी मिट्टी का भी प्रयोग कर सकते हैं। गीला व पक्का रंग बनाने के लिए दो लीटर पानी में एक बड़ा चम्मच हलदी का पाउडर डालकर उबाल लें और इसे थोड़ा गाढ़ा कर लें। पीला रंग बनाने में गेंदे, टेसू या अमलताश के फूलों का भी प्रयोग कर सकते हैं, इसके लिए इन फूलों को पानी में उबालकर रातभर छोड़ दें और सुबह इस रंग का इस्तेमाल होली खेलने के लिए करें।

लाल रंग बनाने के लिए लाल चंदन पाउडर का प्रयोग किया जा सकता है, इसमें गुड़हल के फूलों को सुखाकर और पीसकर मिलाया जा सकता है, इससे लाल गुलाल और भी लाल व खुशबूदार हो जाता है। गीला रंग बनाने के लिए दो चम्मच लाल चंदन पाउडर में एक लीटर पानी मिलाएँ और इसे उबालें। गाढ़ा नारंगी लाल रंग बनाने के लिए एक चुटकी कत्था और दो चम्मच हलदी पाउडर में कुछ बूँदें पानी की मिलाकर पेस्ट बनाएँ।

गुलाबी रंग बनाने के लिए चुकंदर का प्रयोग कर सकते हैं। एक चुकंदर को काटकर या इसे पीसकर एक लीटर पानी में भिगोएँ और सुबह इस घोल को अच्छे से उबालकर गाढ़ा कर लें। इसमें पानी मिलाकर इससे होली का आनंद लें। कचनार के फूलों को भी रातभर पानी में भिगोने से प्राकृतिक गुलाबी या केसरिया रंग बन जाता है।

नीला रंग बनाने के लिए नील के पौधों पर निकलने वाली फलियों को पीस लें और इसे पानी में उबालकर मिला लें, इसी तरह नीले गुड़हल के फूलों को भी सुखाकर पीसने से नीला रंग तैयार किया जा सकता है।

इस तरह अपने आस-पास खिलने वाले फूलों व घर में मौजूद सामग्रियों से ही होली खेलने के लिए रंग बनाए जा सकते हैं, जो कि हमारे स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होने के साथ-साथ हमारी त्वचा के लिए भी सुकूनदायक होंगे, तो क्यों न इस बार होली में रंग खेलने के लिए रासायनिक रंगों के बजाय प्राकृतिक रंगों का प्रयोग करें। ऐसा करने से ही यह रंगों का त्योहार उमंग व उल्लास के प्रसार का कारण बन सकेगा। ❑

जोसेफ पेण्डेल अपने समय के प्रतिष्ठित दार्शनिक थे। उनका सारे इंग्लैंड में बड़ा मान था। उनके पिता मोची का काम करते थे। उन्हें भी वही कार्य करने में संतोष की अनुभूति हुई। जितनी देर में पेट भरने की मजदूरी पूरी हो जाए, उतना ही समय काम करते थे और शेष समय विद्याध्ययन में लगाते थे। पुस्तकालयों से उनकी ज्ञानपिपासा पूर्ण होती थी। वे नए जूते बनाने की अपेक्षा पुरानों की मरम्मत में अपनी प्रतिभा को विकसित होने और जनता के धन की बरबादी रुकने का लाभ देखते थे। वे स्थायी दुकान लगाकर नहीं रहे।

जब भी अच्छे पुस्तकालय और ऊँचे विद्वानों की चर्चा सुनते तो वहीं अपना सरंजाम उठा ले जाते और कहीं खाली जगह में बैठकर अपना काम-धंधा आरंभ कर देते। शेष समय में अध्ययन और ज्ञानचर्चा करते रहते। उन्होंने बहुत कुछ लिखा भी है। उनकी तुलना भारत के संत रैदास से की जाती थी।

सनातन संस्कृति का पालना-कश्मीर

भारत के ऐतिहासिक, दार्शनिक, साहित्यिक पक्ष पर जब भी निष्पक्ष विचार किया जाएगा, कश्मीर की उसमें महती भूमिका रहेगी। कश्मीर भरतमुनि जैसे नाट्यशास्त्रियों की न केवल कर्मभूमि रही है; बल्कि यह कल्हण की 'राजतरंगिणी' की ऐतिहासिक विरासत भी अपने अंदर छिपाए हुए है। संस्कृत भाषा में लिखित 'राजतरंगिणी' इतिहास की कसौटी पर खरी उतरती है। इसमें इतिहास है और राजाओं की तिथियों का वर्णन है। प्रत्येक तरंग कश्मीरी महाभारत, चंपक, प्रभुबुत का उल्लेख है। कल्हण ने लौकिक वर्ष चार हजार चौबीस अर्थात शालिवाहन शक दस सौ सत्तर, ईसवी सन् ग्यारह सौ अड़तालीस में इस ग्रंथ का लेखन प्रारंभ किया था और दो ही वर्ष में पूर्ण कर दिया था। सन् 1150 ई० में कल्हण के बाद जोनराज ने इतिहास लिखा। उसमें कल्हण का संदर्भ दिया है।

प्राचीनकाल से कश्मीर सनातन संस्कृति का पालना रहा है। माना जाता है कि यहाँ देवी सती रहा करती थीं और उस समय यह पूरी घाटी पानी में डूबी हुई थी। यहाँ एक राक्षस नाग भी रहता था, जिसे वैदिक ऋषि कश्यप और देवी सती ने मिलकर हरा दिया और ज्यादातर पानी वितस्ता (झेलम) नदी के रास्ते बहा दिया। इस तरह इस जगह का नाम 'सतीसर' से 'कश्मीर' पड़ा। एक मान्यता यह भी है कि इसका वास्तविक नाम कश्यपसर (अथवा कछुओं की झील) था, इसी से कश्मीर नाम निकला। कश्मीर भारत का सिरमौर है। स्वतंत्रता के बाद से इसके एक हिस्से पर भारत का आधिपत्य है तथा अन्य हिस्से पर पाकिस्तान अनधिकृत रूप से अपना कब्जा बताता है, जिसे पी० ओ० के० कहते हैं। कश्मीर को मुसलिमबहुल प्रदेश कहा जाता है, किंतु यदि कश्मीर को समग्रता से देखा जाए तो उसके अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग पूजापंथ के लोग हैं। संपूर्ण कश्मीर में अपने-अपने क्षेत्र की बोलियाँ हैं, जो वहाँ के निवासियों के लिए उनकी अपनी भाषाएँ हैं, जिनमें उनका अपना लोकजीवन भरा है, जिसे वे गँवाना नहीं चाहते।

कश्मीर के उत्तरी इलाके और पाक के कब्जे में पड़े भू-भाग और चीन-अधिकृत अक्साई चिन की भाषा से वहाँ के लोगों की सनातन मान्यता, आस्था और विश्वास डगमगा रहा है। आखिर इस धरती से हमारा अस्तित्व और आस्था का नाता है। क्या हम यहाँ के सुंदर सरोवर, डल, वुलर और नगीन को भुला सकते हैं? कश्मीर का अच्छा-खासा इतिहास कल्हण के ग्रंथ राजतरंगिणी से (और बाद के अन्य लेखकों से) मिलता है। यहाँ पूर्व में हिंदू राजाओं का राज रहा है। मौर्य सम्राट अशोक और कुषाण सम्राट कनिष्क के समय कश्मीर बौद्ध धर्म और संस्कृति का मुख्य केंद्र बन गया। पूर्व-मध्ययुग में यहाँ के चक्रवर्ती सम्राट ललितादित्य मुक्तापीड़ ने एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया था। कश्मीर संस्कृति एवं विद्या का विख्यात केंद्र था।

मध्ययुग में मुसलिम आक्रमणकारी कश्मीर पर काबिज हो गए। सुल्तान सिकंदर बुतशिकन ने यहाँ के मूल कश्मीरी हिंदुओं को मुसलमान बनने या राज्य छोड़ने अथवा मरने पर मजबूर कर दिया था। कुछ ही सदियों में कश्मीर घाटी में मुसलिम बहुमत हो गया। मुसलमान शाहों में यह बारी-बारी से अफगान, कश्मीरी मुसलमान, मुगल आदि वंशों के पास गया। मुगल सल्तनत गिरने के बाद से कश्मीर सिख महाराजा रणजीत सिंह के राज्य में शामिल हो गया। कुछ समय बाद जम्मू के हिंदू डोगरा राजा गुलाब सिंह डोगरा ने ब्रिटिश लोगों के साथ संधि करके जम्मू के साथ कश्मीर पर भी अधिकार कर लिया। डोगरा वंश भारत की आजादी तक कायम रहा। भारत की आजादी के समय कश्मीर घाटी में लगभग 15 प्रतिशत हिंदू थे और बाकी मुसलमान। बाद में आतंकवाद ने यहाँ घोर तबाही मचा दी। यहाँ के सांस्कृतिक प्रवाह को रोकने का षड्यंत्र भी चला।

रणनीतिक ही नहीं, ऐतिहासिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अद्वितीय, 'जम्मू-कश्मीर' भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। इसी जम्मू-कश्मीर का एक हिस्सा अवैध रूप से पाकिस्तान के कब्जे में है। सन् 1947 में भारत का यह प्रिय सिरमौर 'जम्मू-कश्मीर' दो भागों में

विभाजित हो गया। जम्मू-कश्मीर (जो भारत का हिस्सा है) और गिलगिट-बाल्टिस्तान, तथाकथित आजाद जम्मू-कश्मीर और उत्तरी क्षेत्र, जिस पर पाकिस्तान अपना कब्जा बताता है।

वर्तमान में जम्मू-कश्मीर का क्षेत्रवार परिदृश्य इस प्रकार है—जम्मू-कश्मीर का कुल क्षेत्र 2,22,236 वर्ग किलोमीटर है। पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्र (पी० ओ० के०-ए० जे० के० गिलगिट-बाल्टिस्तान) के तहत क्षेत्र—78,114 वर्ग किलोमीटर है। चीनी कब्जे के तहत जम्मू-कश्मीर का क्षेत्र 42,685 वर्ग किलोमीटर है। वह क्षेत्र जो पाकिस्तान ने चीन को सौंप दिया 5130 वर्ग किमी है। पाकिस्तान और चीन के तहत कुल क्षेत्र 1,20,799 वर्ग किलोमीटर है। भारत के पास कुल क्षेत्र 1,01,437 वर्ग किलोमीटर है।

वस्तुत: जम्मू (पी० ओ० के० और चीनी कब्जे के अधीन क्षेत्रों सहित) कश्मीर राज्य 16 मार्च सन् 1846 को राज्य तथा एक राजनीतिक संरचना के अस्तित्व में मौजूदा स्वरूप में आया था। इस तिथि को अमृतसर संधि के रूप में जाना जाता है। इस संधि पर महाराजा गुलाब सिंह और ब्रिटिश सरकार द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे। सिंधु नदी के उत्तरी क्षेत्रों का महाराजा रणवीर सिंह के शासन के दौरान विलय हुआ था। इन क्षेत्रों के विलय को ब्रिटिश सरकार द्वारा अनुमोदित किया गया था।

महाराजा रणवीर सिंह के समय में जम्मू-कश्मीर राज्य प्रशासनिक दृष्टि से निम्नानुसार था—(1) जम्मू, (2) कश्मीर (3) लद्दाख, (4) गिलगिट और फ्रंटियर इलाके। 26 अक्टूबर, सन् 1947 को जम्मू-कश्मीर के महाराजा हरि सिंह ने भारत संघ में विलय को स्वीकार कर लिया। करांची समझौते के तहत 28 अप्रैल, सन् 1949 को गिलगिट-बाल्टिस्तान से मिलकर उत्तरी क्षेत्र, ए० जे० के० पाकिस्तान के कब्जे में गए। भारत के साथ जम्मू-कश्मीर के विलय का समर्थन 15 फरवरी, सन् 1947 को जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा की लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित संस्था द्वारा किया गया था।

उत्तरी क्षेत्र, कराची समझौते के बाद पाकिस्तानी शासन के प्रत्यक्षत: अधीन आ गया और तथाकथित प्रशासनिक ढाँचे में उसे सन् 1947 के बाद से 'आजाद जम्मू-कश्मीर' नाम दिया गया। 24 अक्टूबर, सन् 1947 में पाक अधिकृत कश्मीर में एक युद्ध परिषद् स्थापित की गई, जो पाकिस्तान के 'सरकारी बिजनेस के नियमों (आर० ओ० बी०)' के तहत काम कर रही थी। पाकिस्तान द्वारा ए० जे० के० सरकार को नाममात्र की शक्तियाँ दी गई थीं। वास्तविक शक्ति तो पाकिस्तान ने अपने पास रखी थी।

इस तथ्य की पुष्टि सन् 1953 से सन् 1974 तक ए० जे० के० की बर्खास्त सरकारों से होती है। सन् 1953 में एम० इब्राहिम खाँ ने पहली सरकार, अब्दुल कयूम खाँ, शेर अली और मीरवाइज युसूफ शाह के नेतृत्व वाली सरकारों को बर्खास्त कर दिया। सन् 1955 में मार्शल लॉ पाकिस्तान नियंत्रण के खिलाफ विरोध प्रदर्शन के बाद लगाया गया था। प्रथम निर्वाचित सरकार को सन् 1964 में बर्खास्त कर दिया गया।

ए० जे० के० सुप्रीम कोर्ट के निम्नांकित दो निर्णयों से साफ हो गया था कि ए० जे० के० (पी० ओ० के) और उत्तरी क्षेत्र पाकिस्तान का हिस्सा नहीं हैं। पहला निर्णय 3 अगस्त, सन् 1993 को पाकिस्तान द्वारा पाक-अधिकृत कश्मीर के उत्तरी क्षेत्रों पर नियंत्रण के संबंध में दिया गया था। इस निर्णय में उत्तरी क्षेत्रों की क्षेत्रीय स्थिति को मंजूरी दी गई। सुप्रीम कोर्ट ने 15 अगस्त, 1947 की स्थिति में (जिसमें जम्मू और कश्मीर के साथ उत्तरी क्षेत्रों के एकीकरण का समर्थन है) यह निर्णय दिया था।

यह निर्णय कानूनी और ऐतिहासिक तथ्यों और ब्रिटिश भारत की सरकारों के साथ जम्मू के शासकों और कश्मीर से की गई संधियों के आधार पर था। दूसरा निर्णय ए० जे० के० सुप्रीम कोर्ट के जजों की नियुक्ति को अपने अधिकार में लेने का था। पाकिस्तान के महाधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए पत्र मो/351824 नवंबर 10,1991 राज्यों के/91 के माध्यम से निर्देश दिया गया था। पाकिस्तान के 1973 के संविधान के अनुसार—उत्तरी क्षेत्र पाकिस्तान का हिस्सा नहीं है। उत्तरी क्षेत्र संवैधानिक और कानूनी तौर पर भौगोलिक दृष्टि से, ऐतिहासिक दृष्टि से जम्मू-कश्मीर का हिस्सा है और ऐसा ही रहेगा, उत्तरी क्षेत्र जम्मू और कश्मीर का अविभाज्य हिस्सा है और इसके नियंत्रण के लिए एक समझौते के तहत पाकिस्तान के साथ है, लेकिन उत्तरी क्षेत्र पाकिस्तान का हिस्सा नहीं है। राजनीतिक परिस्थितियाँ जो भी रहें, यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि संस्कृति की दृष्टि से कश्मीर भारत का अभिन्न अंग था और रहने वाला है। संस्कृति की साम्यता ही इस एकता का आधार रही है। ❑

शिक्षा-क्षेत्र के कुछ अद्भुत प्रयोग

व्यक्तित्व विकास में शिक्षापद्धति एक अहम भूमिका निभाती है। सभी मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि बचपन में बच्चों को दी गई शिक्षा उनके व्यक्तित्व को एक साँचे में ढाल देती है और धीरे-धीरे वह साँचा एक सुदृढ़ आकार लेने लगता है। तात्पर्य यह है कि यदि कम उम्र में ही विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा दी जाए, जिससे वे अपने व्यक्तित्व का बहुआयामी विकास कर सकें, तो ऐसी शिक्षा उनके लिए सर्वोत्तम होगी। वर्तमान शिक्षापद्धति भी बच्चों को बहुत कुछ सिखाती है; लेकिन यह बच्चों में शिक्षा के प्रति रुचि पैदा नहीं कर पाती, जिसके कारण बच्चे पढ़ाई से दूर भागते हैं, पढ़ाई से हटकर अन्य दूसरी चीजों में रुचि लेते हैं। बच्चे तभी जबरन पढ़ते हैं, जब उन पर दबाव डाला जाता है, उनको होमवर्क करने के लिए बाध्य किया जाता है; देखा जाए तो एक तरह से बच्चों की पढ़ाई मात्र कक्षाओं को पास करते हुए आगे बढ़ने के लिए होती है।

यह भी देखा जाता है कि जैसे-जैसे बच्चे अपनी कक्षा में आगे बढ़ते जाते हैं, उनका स्कूली बैग भी भारी होता जाता है। पढ़ाई का, होमवर्क का—बच्चों पर इतना दबाव होता है कि उसे कम करने के लिए उन्हें ट्यूशन पढ़ाना पड़ता है। इस तरह छोटी उम्र में ही बच्चों पर इतना मानसिक दबाव होता है कि वे अपनी उम्र में हँसी-खुशी का आनंद ही नहीं ले पाते। पढ़ाई के कारण उनके खेलने-कूदने पर भी रोक लगाई जाती है और भाँति-भाँति से पढ़ने के लिए विवश किया जाता है।

स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा हमारे दैनिक जीवन के लिए कितनी उपयोगी है; उससे हम अपने जीवन में क्या सुधार कर सकते हैं, अपने व्यक्तित्व को कैसे गुणवान बना सकते हैं, कैसे शिक्षा के द्वारा हम अपने परिवार व समाज को लाभान्वित कर सकते हैं—यह सब आज की शिक्षापद्धति में देखने को नहीं मिलता।

हमारे देश में ढर्रे पर चल रही शिक्षापद्धति में बदलाव की दिशा में कुछ नवीन उदाहरण सामने आए हैं, जो भारतीय संस्कृति से अपना गहरा जुड़ाव दिखाते हैं। उदाहरण के लिए चौथी शताब्दी ई० पू० में आचार्य पाणिनि ने शिक्षा की एक विशेष पद्धति विकसित की थी—पाणिनीय शिक्षा। प्रौद्योगिकी शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी मेसरा, रांची स्थित बिरला इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (बी० आई० टी०) का किसलय विद्यामंदिर गत तीन दशकों से बच्चों को इसी पद्धति पर शिक्षा देने के प्रयास में जुटा है। बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए पढ़ाई हेतु वैदिक व रुचिकर तरीकों को श्रेष्ठ मानने वाले रांची के न्यूक्लियर साइंटिस्ट और बी० आई० टी० मेसरा से जुड़े डॉ० राकेश पोपली ने सन् 1988 में इस विद्यालय की बुनियाद रखी थी। इस विद्यालय में पढ़ने वाले ज्यादातर बच्चे निम्नवर्गीय परिवार से हैं। वर्तमान में इस विद्यालय में लगभग 200 बच्चे अध्ययनरत हैं।

इस पाणिनीय शिक्षापद्धति में बच्चे हिंदी की वर्णमाला के अक्षरों का उच्चारण करते हुए अपने गले में होने वाले कंपन को भी हाथ से छूकर महसूस करते हैं और अक्षर विशेष की पहचान उसकी ध्वनि की उत्पत्ति के माध्यम से भी करते हैं। इसी तरह ओंठ, तालु और दाँत के सहारे उच्चरित और ध्वनित होने वाले अक्षरों की विशेषता को वह अच्छी तरह पहचान जाते हैं। परिणामत: इससे बच्चे अक्षर विज्ञान में भी पारंगत हो जाते हैं। बी० आई० टी० का यह मानना है कि पाणिनीय शिक्षण-पद्धति का यह तरीका बच्चों के बहुआयामी विकास में सहायक सिद्ध होता है। पाणिनि की पद्धति के आधार पर यहाँ गणित और विज्ञान को भी रुचिकर तरीके से पढ़ाया जाता है।

बच्चे यहाँ दो और तीन अंकों वाले जोड़ को सीखने के लिए माचिस की तीलियों का प्रयोग करते हैं। यहाँ के विद्यालय परिसर में 135 अलग-अलग तरह के पेड़-पौधे हैं। इनके पत्तों के रंग भी अलग-अलग हैं। बच्चे इन्हें देखकर, छूकर, कभी-कभी चखकर व सूँघकर—इनके रंग, स्वाद व गंध से परिचित होते हैं। यहाँ के ज्यादातर पौधे वनौषधि हैं, इसलिए इससे बच्चों की प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है और वो वायरल बुखार जैसी बीमारियों से भी बचे रहते हैं।

इस स्कूल की प्रधानाचार्या रमा पोपली के अनुसार—बच्चों को दी जाने वाली पाणिनीय शिक्षण की इस तकनीक से 5 से 12 साल तक के बच्चों में पढ़ाई के प्रति रुचि, समझ व एकाग्रता बढ़ी है। आमतौर पर छोटी उम्र में बच्चे तीन मिनट से अधिक एकाग्रता नहीं बना पाते; लेकिन इस विद्यालय के बच्चों को 15 मिनट तक एक ही पाठ आराम से पढ़ने में कोई दिक्कत नहीं होती है।

प्रधानाचार्या के अनुसार—कोई भी विद्यार्थी जब कंठ, ओंठ, जीभ, तालु आदि से ध्वनि के उच्चारण को महसूस कर लेता है, तो इसके बाद उस अक्षर को लिखने की बारी आती है। फिर लेखन के लिए भूरे रंग के बोर्ड पर उक्त अक्षर को ध्वनि रेखाओं और विन्यास के माध्यम से वह उकेरता है। जिस तरह संत कबीरदास जी का कहना था—'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखिन की देखी।' हालाँकि कबीरदास की आंखिन देखी से तात्पर्य अंत:दर्शन के अनुभवों के बखान से था; लेकिन फिर भी एक तरह से आज किसलय विद्यामंदिर में विद्यार्थी आंखिन देखी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

शिक्षण-पद्धति में नवीनता लाने का एक अद्भुत प्रयास उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के एक प्राथमिक विद्यालय, करमपुर में भी किया गया है। जहाँ नो बैग डे, खेल की पोशाक, टीचर-पैरेन्ट्स मीटिंग और डायनिंग हॉल जैसी सुविधाओं व व्यवस्थाओं को एक सरकारी स्कूल में उपलब्ध कराया गया है। बच्चों को दी जाने वाली इस तरह की सुविधाएँ किसी कॉन्वेन्ट स्कूल से भी बेहतर दिखती हैं; लेकिन यह सब संभव हुआ है—इस विद्यालय के प्रधानाचार्य उमेश सिंह के प्रयासों से, जिन्होंने इस विद्यालय में बुनियादी शिक्षण-पद्धति का ऐसा वातावरण बनाया है, जो दूसरों के लिए आदर्श है।

कुछ नया करने की सोच का ही यह परिणाम है कि छोटा कैंपस, कम संसाधन, मात्र दो अध्यापक और एक शिक्षामित्र होने के बावजूद इस विद्यालय की पठन-पाठन व्यवस्था काफी बेहतर है। इसी कारण यहाँ के अभिभावक अपने बच्चों को कॉन्वेन्ट स्कूल के बजाय सरकारी स्कूल में भेजना अधिक पसंद कर रहे हैं। इस विद्यालय में हर छात्र की डायरी बनी हुई है, जिसमें पूरे वर्ष का रिकॉर्ड रखा जाता है। बच्चों के क्लास वर्क की कॉपियाँ विद्यालय में ही रहती हैं, जिन्हें बच्चों को विद्यालय से ही उपलब्ध कराया जाता है। यहाँ बच्चे विद्यालय में गैरहाजिर होना ही नहीं चाहते और यहाँ बच्चों के स्वास्थ्य जाँच के लिए मेडिकल किट की भी व्यवस्था है।

इस विद्यालय में बच्चों के खेल-कूद का भी अच्छा माहौल है। शतरंज में तो यहाँ के कुछ बच्चे अपनी उम्र के हिसाब से भी बहुत अच्छा खेलते हैं। इसके अलावा बच्चों को योग, स्काउट ज्ञान के साथ-साथ स्वच्छता का पाठ भी सिखाया जाता है। इस विद्यालय की खूबी यह है कि यहाँ बच्चे नीचे बैठकर एम०डी०एम० (मिड डे मील) भोजन नहीं करते, अपितु उनके लिए बाकायदा एक अलग कमरे में भोजनालय बना है; उसमें सीमेंट की ही इस तरीके से बेंच बनी हैं कि एकदूसरे की तरफ मुँह करके बच्चे खाना खा सकें। बेंचों पर एक साथ भोजन कर रहे बच्चों के चेहरों पर भी एक अलग ही तरह की खुशी रहती है। इन बेंचों का प्रयोग अभिभावकों के संग होने वाली बैठकों में भी किया जाता है।

इस विद्यालय में हर बुधवार व शनिवार को 'नो-बैग डे' रहता है और प्रधानाचार्य की पहल पर ही विद्यालय में बच्चों को स्पोर्ट्स ड्रेस भी दी गई है, जो 'नो-बैग डे' के दिन उन्हें पहनकर आना होता है। खेल-खेल में सीखने की परंपरागत विधियाँ इस स्कूल को सबसे अलग व वर्तमान शिक्षण-व्यवस्था के लिए एक आदर्श मॉडल बनाती हैं।

शिक्षण-पद्धति में कुछ नया करने की दिशा में एक और अच्छा प्रयास मध्य प्रदेश के सिंगरौली जिले के छोटे से गाँव बुधेला के वीणावादिनी पब्लिक स्कूल में किया गया है। दुनिया में अधिकांश लोग अपने दाएँ हाथ से लिखते हैं और लगभग 10 प्रतिशत लोग लिखने में अपने बाएँ हाथ का प्रयोग करते हैं; लेकिन इस विद्यालय के एक-दो नहीं, बल्कि 200 से भी ज्यादा बच्चे अपने दोनों हाथों से एक साथ लिखने की कला में माहिर हैं। इस तरह कंप्यूटर के की-बोर्ड से भी तेज रफ्तार से उनकी कलम चलती है। जो लिखने का कार्य सामान्य बच्चे आधे घंटे में पूरा करते हैं, दोनों हाथों से लिखने के द्वारा ये बच्चे उसे मिनटों में ही पूर्ण कर देते हैं। यह अचरज की बात है, लेकिन यहाँ पर लिखने की ऐसी शिक्षा दी जाती है कि इसे देखकर और इसके बारे में सुनकर अचरज में पड़ना स्वाभाविक है और यह एक अजूबे से भी कम नहीं है।

सिंगरौली का यह बुधेला गाँव पहाड़ों से घिरा है, कोयले के अकूत भंडार के बाद भी इस इलाके का पिछड़ापन देखकर यहाँ अच्छी शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती है; लेकिन फिर भी यहाँ एक से बढ़कर एक मेधावी बच्चे हैं।

इस वीणावादिनी पब्लिक स्कूल में कक्षा एक से आठ तक की पढ़ाई होती है। यहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थी कई भाषाओं को दोनों हाथों से एक साथ, एक ही समय में लिखने में सक्षम हैं। यह न तो सरकारी विद्यालय है और न ही इस विद्यालय को सरकार की तरफ से कभी कोई सहायता मिली है, फिर भी आज यह विद्यालय प्रतिभाओं को गढ़ रहा है।

इस विद्यालय की नींव एक सोच पर रखी गई है। घटना यह है कि बैढ़न शहर से करीब 20 किलोमीटर दूर स्थित बुधेला गाँव के निवासी वीरंगद शर्मा, जो जबलपुर में आर्मी की ट्रेनिंग कर रहे थे, उन्होंने एक दिन रेलवे स्टेशन पर एक पुस्तक में यह पढ़ा कि 'देश के प्रथम राष्ट्रपति अपने दोनों हाथों से लिखते थे'—ऐसा कैसे हो सकता है, इस जिज्ञासा ने ही उन्हें विद्यालय की नींव रखने की प्रेरणा दी।

इसके लिए उन्होंने आर्मी की नौकरी छोड़ दी और एक विद्यालय शुरू किया। दोनों हाथों से लिखने का जब वीरंगद शर्मा ने स्वयं प्रयास किया तो वो सफल नहीं हुए; लेकिन जब उन्होंने बच्चों पर प्रयोग आजमाया, तो वो इसे सीखने में सफल रहे। अब इस विद्यालय में सभी विद्यार्थियों की दोनों हाथ से एक साथ लिखने की कला विशेषज्ञता बन गई है और यह विद्यालय भारत का इकलौता उभयहस्तकुशल विद्यालय (Ambidextrous school) बन गया है।

उभयहस्तकुशलता यानी लिखने में अपने दोनों हाथों को एक समान तरीके से उपयोग करना और इसके लिए हमारे मस्तिष्क का भी तेज गति से कार्य करना व इसमें सामंजस्य बैठाना जरूरी है। दोनों हाथों से समान गति से एक साथ लिखने में कुशल मानसिक क्षमता चाहिए; जिसके बारे में इस विद्यालय के निर्माता श्री वीरंगद शर्मा का कहना है कि पहले एक महीने तक बच्चे को एक हाथ से लिखना सिखाया जाता है, फिर एक महीने के बाद उस हाथ को छोड़कर दूसरे हाथ से लिखना सिखाया जाता है, जब दोनों हाथों से बच्चों में लिखने की पकड़ आ जाती है, तो फिर दोनों हाथों से एक साथ कलम पकड़कर उन्हें लिखने के लिए कहा जाता है। 45 मिनट की एक क्लास में हर बच्चा 15 मिनट दोनों हाथों से एक साथ लिखने का अभ्यास करता है। हालाँकि इसके लिए बहुत एकाग्रता चाहिए और इस एकाग्रता को बढ़ाने के लिए श्री वीरंगद शर्मा बच्चों को योग का अभ्यास कराते हैं। वैज्ञानिक विधियों का सहारा लेते हुए खेल-खेल में बच्चों को पढ़ाई भी यहाँ सिखाई जाती है।

दोनों हाथों से एक साथ लिखने की कला आने पर बच्चों में दो भाषाओं को एक साथ सुनने व समझने की समझ भी बढ़ रही है। इन बच्चों का दिमाग इतना तेज है कि यहाँ हर बच्चे को 1 से लेकर 80 तक का पहाड़ा याद है। न्यूरोलॉजिस्ट के अनुसार भी दोनों हाथों से एक साथ लिखने की कला आने पर बच्चों का विकास एक अलग ही स्तर पर होता है।

सन् 2004-05 में अमेरिका से अपने जापानी मित्रों के साथ सिंगरौली के बुधेला गाँव पहुँचे लायंस क्लब के अंतरराष्ट्रीय चेयरमैन ने जब यहाँ के बच्चों की इस प्रतिभा को देखा तो अत्यंत आश्चर्यचकित हुए। तीन दिन तक यहाँ रहने के उपरांत वे बच्चों को अपने साथ बनारस ले गए और एक समारोह के दौरान बच्चों के इस हुनर को दिखाते हुए उन्होंने कहा कि यह भारत में दुनिया का 8वाँ अजूबा है।

शिक्षण-पद्धति की दिशा में होने वाले इस तरह के प्रयास यदि भारत देश में सभी जगह लागू हो जाएँ, तो फिर निश्चित रूप से भारत प्रतिभा के क्षेत्र में दुनिया का सिरमौर बनेगा। ❑

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः॥

—महाभारत उद्योग पर्व, 33/81

अर्थात मनुष्य को छह गुणों का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। ये छह गुण हैं—सत्य, दान, कर्मण्यता, क्षमा, धैर्य और अनसूया (दूसरों के गुणों में दोष का आरोपण न करना)।

जलसंकट की समस्या का कारगर समाधान

आज भी हमारे देश के कई गाँव व शहर जलसंकट की समस्या से जूझ रहे हैं। बारिश का मौसम समाप्त होते ही देश के अधिकांश क्षेत्रों में भूजल स्तर तेजी के साथ गिर जाता है और फिर जलसंकट की समस्याएँ लोगों के सामने आती हैं। हमारे देश के अधिकांश हैंडपंप आज सूख चुके हैं, जिनसे एक बूँद पानी भी नहीं निकलता; लेकिन अचरज की बात यह है कि यही हैंडपंप आज धरती को लाखों लीटर पानी लौटा भी सकते हैं। इसका सफलतम प्रयोग किया गया—मध्य प्रदेश के आदिवासी विकास खंड कराहल के चार गाँवों में।

सन् 2016 में यह प्रयोग कराहल के डाबली, अजनोई, झरेर और बनार गाँवों में किया गया। आदिवासीबहुल ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए काम करने वाले श्योपुर के गांधी सेवा आश्रम ने जर्मनी की जी० आइ० जेड० और हैदराबाद की एफ० प्रो० संस्था के साथ मिलकर यह प्रयोग आरंभ किया। इससे पहले जर्मनी की संस्था ने इसका सफल प्रयोग गुजरात और राजस्थान के सूखे इलाकों में किया था। इस प्रयोग के लिए श्योपुर के ये गाँव इसलिए चुने गए; क्योंकि यहाँ के अधिकांश हैंडपंप सूख चुके थे। इन गाँवों में अंधाधुंध बोरिंग इस प्रकार हुए थे कि मात्र दो बीघा खेत में आधा दर्जन बोरिंग थे। जिसका परिणाम यह था कि इन गाँवों का भूजल स्तर बहुत गिर गया था और इसके कारण गाँव के सभी जलस्रोत सूख गए थे।

आज इन चारों गाँवों के 11 सूखे हैंडपंप और दो कुएँ जमीन के अंदर गाँव के उपयोग के बाद निकलने वाले दूषित पानी व बारिश के पानी को फिल्टर करके जमीन के अंदर पहुँचा रहे हैं। इसका परिणाम यह है कि इन क्षेत्रों में भूजल स्तर बढ़ गया है, इससे गाँव के जो हैंडपंप और कुएँ सूखे पड़े थे, उन्होंने अब पानी देना प्रारंभ कर दिया है।

भूजल समृद्ध करने की इस पद्धति को इन्जेक्शन पद्धति कहते हैं। इस पद्धति के अंतर्गत हैंडपंप के चारों ओर करीब 10 फीट गहरा गड्ढा खोदा जाता है। हैंडपंप के केसिंग पाइप में जगह-जगह एक से डेढ़ इंच व्यास के 1200 से 1500 छेद किए जाते हैं। इसी पाइप के जरिए पानी जमीन में जाता है। जमीन में पानी पहुँचने से पहले पानी को साफ करने के लिए गड्ढे में फिल्टर प्लांट भी बनाया जाता है। इस फिल्टर प्लांट में बोल्डर, गिट्टी, रेत और कोयले जैसी चीजें परत-दर-परत जमाई जाती हैं। इनसे छनने के बाद ही बारिश का पानी हैंडपंप के छेदयुक्त पाइप तक पहुँचता है। पाइप पर भी जालीदार फिल्टर लगाया जाता है। इस तरह बेहद कारगर रेनवाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम तैयार हो जाता है।

एक सूखे हैंडपंप को जलस्रोत रिचार्ज यूनिट बनाने में करीब 45 हजार रुपये का खरच आता है, लेकिन इसका बहुत बड़ा फायदा है; क्योंकि अब यह खराब हैंडपंप एक साल में साढ़े तीन से चार लाख लीटर पानी जमीन के अंदर पहुँचा रहा है। सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार—एक सामान्य हैंडपंप से हर साल 3 लाख 60 हजार लीटर तक पानी निकाला जाता है। जबकि इस पद्धति से एक खराब हैंडपंप भी उतना ही पानी जमीन में वापस भेज रहा है, जितना एक सही हैंडपंप जमीन से खींच रहा है। इस तरह जमीन का भूजल स्तर समृद्ध हो रहा है और जमीन से जल खींचकर लाने वाले हैंडपंप ही आज उसे जल-समृद्धि का उपहार देने में कारगर हो रहे हैं।

भूजल-समृद्धि बढ़ाने व धरती की प्यास बुझाने वाली एक अनूठी पहल उत्तराखंड के जमोली ब्लॉक में भी हो रही है। इस ब्लॉक की लुठियोग, धनकुराली, इजरा, महरकोटी, कोटी, ध्यानो, त्योंखार, मखेत, नौसारी, पालाकुरानी, मेहरगांव, थाला व फत्यूड़ ग्रामसभा में बिना किसी सरकारी मदद के किया जाने वाला जल-संरक्षण का कार्य उन क्षेत्रों के लिए एक उदाहरण है; जो पानी के संकट से जूझ रहे हैं।

इन गाँवों की महिलाओं ने श्रमदान करके सबसे पहले लुठियोग गाँव में बरसाती पानी की एक झील तैयार की, इसमें 11 लाख लीटर बरसाती पानी का संग्रहण किया गया। तीन वर्ष पूर्व यह गाँव बूँद-बूँद पानी के लिए मोहताज था,

लेकिन आज यहाँ हर घर में न केवल पर्याप्त पानी मिल रहा है; बल्कि ग्रामीण इससे साग-सब्जी का भी अच्छा-खासा उत्पादन कर परिवार की आर्थिकी भी सँवार रहे हैं।

सन् 2014 में ग्रामसभा लुठियोग में 205 परिवार रहते थे, लेकिन समस्या यह थी कि उस समय गाँव में केवल एक ही प्राकृतिक जलस्रोत बचा था, जो बरसात के चार महीनों को छोड़ शेष समय सूखा रहता था। ऐसे में ग्रामीणों को ढाई से तीन किलोमीटर दूर से जरूरत का पानी जुटाना पड़ता था, इसलिए फिर वहाँ से 101 परिवार पलायन कर गए। इसे देखकर सन् 2014 में ग्रामीणों ने राजराजेश्वरी ग्राम कृषक समिति का गठन कर गाँव के हर परिवार के लिए पानी जुटाने का संकल्प लिया।

इसके लिए 5 जून, 2014 को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर 104 परिवारों की महिलाओं के साथ अन्य ग्रामीणों ने पेयजल स्रोत से डेढ़ किलोमीटर ऊपर जंगल में एक झील बनाने का कार्य शुरू कर दिया। एक माह की कड़ी मेहनत के बाद 40 मीटर लंबी और 18 मीटर चौड़ी झील बनकर तैयार हो गई। धीरे-धीरे इस झील में बारिश का पानी जमा होने लगा और सन् 2015 में इसमें करीब पाँच लाख लीटर पानी जमा होने से गाँव में पेयजल स्रोत रिचार्ज होने शुरू हो गए। यही नहीं स्रोत से सटे नमस्थलों पर भी जलस्रोत फूटने लगे।

सन् 2016 में झील में पानी की मात्रा आठ लाख लीटर हो गई, जो वर्तमान में 11 लाख लीटर है। इसके बाद ग्रामीणों ने रिलायंस फाउंडेशन की मदद से जलस्रोत के समीप 22 हजार व 50 हजार लीटर क्षमता के दो जल स्टोरेज टैंकों का निर्माण कराया, जिनसे सभी घरों को पर्याप्त पानी मिल रहा है।

ग्राम लुठियोग की तरह जखोली ब्लॉक के अन्य 12 ग्रामों में भी जलसंकट की जो समस्या थी, उसे दूर करने के लिए वहाँ की महिलाओं ने श्रमदान कर गाँव से एक-डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर झील का निर्माण प्रारंभ किया। परिणाम यह हुआ कि सभी गाँवों में सूख चुके पुराने जलस्रोत रिचार्ज हो गए। आज इन गाँवों की स्थिति यह है कि वहाँ अब पानी की कोई दिक्कत नहीं है। लोग वहाँ अब जैविक ढंग से सब्जियों का भरपूर उत्पादन कर रहे हैं, जिसका सभी परिवारों को लाभ मिल रहा है।

इस तरह गाँवों की प्यास बुझाने के साथ यह महिला सशक्तीकरण की भी अनूठी पहल है; जो उन सभी क्षेत्रों के लिए अनुपम उदाहरण है, जो जलसंकट की समस्या से जूझ रहे हैं। इंजेक्शन पद्धति द्वारा भूजल-संरक्षण भी एक आधुनिक तकनीक है, जिससे लोग अपने क्षेत्रों में भूजल का स्तर बढ़ा सकते हैं और धरती की प्यास बुझाने में अपना सहयोग दे सकते हैं। ❑

एक अपंग बच्चे को सामने आया देखकर दयाभाव दिखाते हुए एक सज्जन ने एक डॉलर का सिक्का उसके हाथ में रखा और कहा—''जाओ बेटे! कुछ खाकर अपनी भूख मिटा लो।'' सिक्का लौटाते हुए बच्चे ने स्वाभिमानपूर्वक कहा—''साहब! मैं भीख माँगने नहीं आया। आपसे विनय करने आया हूँ कि मुझे किसी स्कूल में भरती करा दो, जहाँ मैं पढ़ सकूँ।''

उन सज्जन ने बच्चे की बातों से प्रभावित होकर उसे एक स्कूल में दाखिल करा दिया। दोनों पाँवों से अपंग यह लड़का ही एक दिन कुशल हवाबाज सैंडर्स के नाम से विख्यात हुआ।

वस्तुतः जिन्हें भी अशिक्षितों से, असहायों से कोई सहानुभूति है; उन्हें अपनी कृपा धनराशि के रूप में जुटाने के स्थान पर उन्हें स्वावलंबनप्रधान शिक्षा देनी चाहिए। यह उनका सहायता पाने वाले के लिए सर्वश्रेष्ठ उपहार है।

इंटरनेट खरीदारी–सही समझ है जरूरी

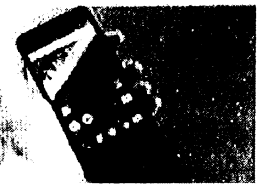

देश में अब ऑनलाइन शॉपिंग का चलन तेजी से बढ़ रहा है। ऐसा नहीं है कि जब ऑनलाइन शॉपिंग नहीं थी, तब त्योहारों पर खरीदारी के संदेश नहीं दिए जाते थे। दीवाली, वर्ष के अंत में विशेष छूट तो बरसों से चलते आ रहे हैं; पर अब एक बुनियादी फरक यह आ गया है। बाजार कहीं दूर नहीं है, हमारी जेब में स्मार्टफोन में स्नेपडील, अमेजन, फ्लिपकार्ट समेत तमाम ई–कॉमर्स वेबसाइटों पर हैं। कुछेक क्लिक दूर बस। बाजार इतना करीब पहले कभी नहीं था।

इंटरनेट की कृपा से बाजार में जाने की जरूरत नहीं है, वह तो हमारे मोबाइल में पड़ा है; बस, उठकर कुछ क्लिक कर दें। यह बाजार हमारी कौन–सी भावना को कब भुना ले जाए, पता भी नहीं चलेगा। किसी भी तरह का अवसर हो, तत्काल उससे लाभ लेती हैं ई–कॉमर्स कंपनियाँ। सोशल मीडिया से लेकर हमारे ई–मेल तक सबमें कुछ–न–कुछ बेचने के संदेश जरूर होंगे, फिर भले ही उस उत्पाद का दूर–दूर तक वास्ता हमारी तात्कालिक जरूरतों से भले न हो।

भारत में ऑनलाइन शॉपिंग के बढ़ते बाजार के पीछे बहुत कुछ मोबाइल क्रांति का हाथ है। अब जहाँ पर हाथ में स्मार्टफोन पहुँच गए हैं, वहीं ऑनलाइन स्टोर्स के मोबाइल एप्लीकेशन यानी एप भी लोगों को आकर्षित करते हैं। ये एप इतने सहज–सरल होते हैं कि एक कम पढ़े–लिखे इनसान को भी इस पर खरीदारी करना आसान हो जाता है। अमेजन जैसी कंपनियाँ जहाँ लोगों को ऑनलाइन शॉपिंग के फायदे से लेकर ऑनलाइन शॉपिंग कैसे करें जैसी मूलभूत बातों को समझा रही हैं, वहीं फ्लिपकार्ट छोटे शहरों के व्यापारियों को उनके सामान की ग्लोबल पहुँच का फायदा समझा रही है। ई–कॉमर्स कंपनियों की वजह से लोगों में ऑनलाइन शॉपिंग की आदत बढ़ी है। पहली नजर में तो यह आदत पैसा और समय, दोनों को बचाने वाली लगती है; लेकिन जैसे–जैसे इसे परखा जाए कई मामलों में यह एक बीमारी–सी लगती है।

ऑनलाइन शॉपिंग में रोज आने वाले सेल के विज्ञापन चीजों के दाम इतने घटाकर दिखाते हैं कि लोगों को लगता है कि वो बहुत सस्ते में सामान खरीद रहे हैं और ये विज्ञापन इस तरह दिखाए जाते हैं कि विज्ञापन देखने वाले को लगने लगता है कि अगर उसी समय उसे न खरीदा गया तो वो दोबारा इतने सस्ते में फिर नहीं मिलेगा; लेकिन हकीकत इन सबसे बिलकुल ही हटकर होती है। हमको लगभग सारे ही सामान, कुछ–कुछ समयांतराल पर उसी कीमत में मिल जाएँगे। इन सामानों पर दिखाई जा रही छूट भी वास्तविक नहीं होती है। ज्यादातर मामलों में तो ये होता है कि कंपनी जो कीमत छूट के बाद बताती है, वो ही उसकी वास्तविक कीमत होती है। मतलब यह कि जो सामान खरीदकर हम खुश होते हैं कि हम दुनिया जीत आए, वह वास्तव में अपने वास्तविक या सामान्य मूल्य पर खरीदी गई होती है।

शोध रिपोर्ट कहती हैं कि आज के समय में बढ़ता हुआ अकेलापन और अवसाद ऑनलाइन शॉपिंग की आदत को बढ़ा रहा है। लोग अपने अकेलेपन से बचने के लिए ऑनलाइन स्टोर्स से शॉपिंग करते हैं। कभी सस्ते के झाँसे में और कभी अपने ही वजूद से लड़ते हुए लोग ऐसा सामान खरीद लेते हैं, जिनकी उन्हें कोई जरूरत ही नहीं होती है। ऑनलाइन शॉपिंग की बढ़ती हुई आदत के पीछे एक और महत्त्वपूर्ण कारण है—ऑनलाइन पेमेंट की सुविधा। यों देखा जाए तो ऑनलाइन पेमेंट बहुत ही सुविधाजनक है। केवल कुछ जरूरी जानकारियाँ देने मात्र से ही पेमेंट हो जाता है। न नकद रखने का झंझट न कोई और, पैसा सीधा हमारे बैंक से निकला और पहुँच गया ई–कॉमर्स कंपनियों के खाते में; लेकिन यह ऑनलाइन पेमेंट ही ऑनलाइन शॉपिंग की बीमारी को बढ़ा रहा है और छलावा अधिक लगता है।

ऑनलाइन पेमेंट में जो भी पैसा हम सामान की खरीदारी के लिए अदा करते हैं, वह केवल एक नंबर होता है। जबकि अगर वही पैसा हम अपने हाथ से गिनकर किसी को दें तो उसकी वास्तविक कीमत महसूस होती है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि यदि हम पैसे को अपने

हाथ से गिनकर खरच करते हैं तो हम उसकी कीमत को ज्यादा बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। ऑनलाइन शॉपिंग में पेमेंट बस कुछ क्लिक्स पर होता है और ऐसे में शॉपिंग पर खरचे जाने वाले पैसे की सही कीमत ही खरीदार नहीं समझ पाता, यानी अगर किसी मोबाइल को खरीदने के लिए पचास हजार रुपये जेब से निकालते हैं, तो जेब से जाते हुए पचास हजार साफ दिखाई देते हैं, महसूस होते हैं, पर कार्ड से कुछ क्लिक के साथ पचास हजार जाएँ, तो वह अनुभव नहीं होता है।

इसके साथ ही आसान किस्तों पर सामान खरीदने की सुविधा भी लोगों में ऑनलाइन शॉपिंग को बढ़ावा दे रही है। जब हमको यह चिंता न हो कि हमारे अकाउंट में उस समय सामान खरीदने लायक पर्याप्त राशि है भी या नहीं, तो कौन सोचता है कि सामान का खरीदा जाना कितना जरूरी है। हालाँकि यह बात अलग है कि जैसे ही वे किस्तें हमारे अकाउंट से कटनी शुरू होती हैं और सामान हमारे घर बेकार पड़ा रहता है, तब एक बार यह ख्याल जरूर आता है कि अब से कुछ भी खरीदारी सोच-समझकर करेंगे; लेकिन ऐसा होता नहीं है। ई-कॉमर्स कंपनियों ने शॉपिंग को बहुत ज्यादा सुविधाजनक बना दिया है। आवश्यकता है तो खरीदारी के समय सतर्कता की और सिर्फ जरूरत का सामान खरीदने की। ऑनलाइन शॉपिंग जिस तरह से बड़े शहरों से निकल कर देश के छोटे शहरों और मध्यमवर्गीय और निम्नवर्गीय लोगों के बीच जगह बना रही है, वहाँ यह जरूरी हो जाता है कि लोगों को ऑनलाइन शॉपिंग के फायदे बताने के साथ-साथ यह भी बताया जाए कि ऑनलाइन शॉपिंग के समय क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिएँ; ताकि मेहनत से कमाए पैसे से खरीदी चीज खुशी देकर जाए, न कि अफसोस। ❑

अशफाकउल्ला काकोरी कांड में जेल की कालकोठरी में बंद थे। फाँसी के फंदे को चुनने में कुछ घंटे ही शेष थे। सभी रिश्तेदार और हितैषी उन्हें मुखबिर बन जाने की सलाह दे रहे थे, परंतु भारतमाता के संरक्षक सच्चे सपूत पर इन सबका कोई असर न पड़ा। उन्होंने फाँसी की कोठरी से अपनी माँ को जो खत लिखा था, वह उनकी संस्कारित चेतना का जीवंत प्रमाण है।

उन्होंने लिखा—'मेरी माँ से बढ़कर मेरे खानदान में कौन-सी माँ हो सकती है, जिसका बेटा जवाँमर्दी और बहादुरी से इस्तिकामत, इस्तकलाल से रास्तबाजी के साथ मासूमियत का जामा पहने हुए कुरबान गाहे वतन पर कुरबान हो रहा है। ....आपको फक्र करना चाहिए कि आपका बच्चा बहादुरी की मौत मर रहा है। यह आपके दूध का असर है कि दिल अंदर से फूला चला जाता है। मुझे कतई ख्याल नहीं गुजरता कि मुझे कल फाँसी दी जाएगी। मेरी अच्छी माँ! मेरी खताएँ माफ फरमाकर मशगुले खुदा हो जाओ।'

उनके जैसे अनेक शहीदों रामप्रसाद बिस्मिल, सरदार भगतसिंह, सुखदेव, चंद्रशेखर आजाद ने ही स्वतंत्र भारत के लिए स्वयं उत्सर्ग कर वह वातावरण बनाया, जिसने फिरंगियों को स्वदेश लौट जाने के लिए विवश कर दिया।

ईश्वर बंद नहीं है मठ में, वह तो व्याप रहा घट-घट में

अँधेरा चाहे कितना भी घना क्यों न हो, प्रकाश के प्रभाव में आते ही उसका प्रभाव समाप्त हो जाता है। प्रकाश के अवतरण के साथ ही अँधेरा भाग खड़ा होता है, अँधेरे का अवसान हो जाता है, तिरोधान हो जाता है। दिनमान के आते ही अँधेरा अदृश्य हो जाता है, काले-काले बादलों से भरा आकाश, दिनमान के आते ही जगमगा उठता है, चमक उठता है, तेजोमय हो जाता है, ज्योतिर्मय हो जाता है।

ठीक उसी तरह से कामनाओं व कर्म संस्कारों से भरा चित्त चिदाकाश आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान के तेजोमय प्रकाश के पड़ते ही जगमगा उठता है, और फिर उसी जगमगाहट में साधक को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है, अपने चैतन्यमयी स्वरूप का ज्ञान होता है। फिर वह अपने चैतन्यस्वरूप ज्ञान के द्वारा अविद्या का नाश करके आत्मरूप अखंड ब्रह्म का साक्षात्कार कर पाता है। तब वह ज्ञान और अज्ञान के कार्य पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, राग-द्वेष एवं संशय-भ्रम के बंधन से मुक्त हो जाता है और उसे यह बोध हो जाता है कि मैं सत्-चित्-आनंदस्वरूप हूँ, मैं नित्य और चैतन्यस्वरूप हूँ। उसे यह आभास होने लगता है कि यह संपूर्ण कायनात, जगत, सृष्टि, ब्रह्मांड, परब्रह्म परमेश्वर की ही अभिव्यक्ति है। सृष्टि के कण-कण में उसी एक ब्रह्म का नूर प्रतिभाषित हो रहा है। ऐसी ब्राह्मी दृष्टि पा लेने के बाद सर्वत्र ब्रह्म-ही-ब्रह्म दीखने लगते हैं। जैसा कि कहा गया है—

एक नूर ते सब जग उपजा
कौन भले कौन मन्दे ?
सब घट मेरा सांइयाँ,
खाली घट न कोय।

वे बाहर से दीखते तो सामान्य हैं, पर उनकी आत्मा ब्रह्म के ब्राह्मीप्रकाश से नहाई हुई होती है। फलतः सामान्य जन जहाँ सांसारिक सुख-दुःख, हानि-लाभ, यश-अपयश, मान-सम्मान के बंधन में पड़े, रीझते और खीजते रहते हैं, वहीं ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त लोग हर पल आनंदित, आह्लादित और प्रफुल्लित रहते हैं।

ऋषिकेश भ्रमण के दौरान स्वामी विवेकानंद को एक ऐसे ही विरले ब्रह्मनिष्ठ संत के दर्शन हुए थे। वे लिखते हैं—'ऋषिकेश में मैंने कई महान व्यक्तियों को देखा। उनमें से एक पागल के समान दीख पड़ते थे। वे दिगंबर रूप में सड़क पर चले आ रहे थे। लड़के पत्थर मारते हुए उनका पीछा कर रहे थे। उनके चेहरे और गले से रक्त झर रहा था; किंतु फिर भी उनका संपूर्ण व्यक्तित्व हँसी से प्रफुल्लित था। मैंने उन्हें एक ओर ले जाकर उनके घावों को धोया। रक्तस्राव बंद करने के लिए उन पर राख लगाई; किंतु वे अनवरत हँस रहे थे और कह रहे थे कि मुझे पत्थर मारने में ब्रह्म रूप लड़कों को कैसा आनंद आ रहा था। अहा! मेरे भगवान उन लड़कों के वेश में क्या खेल, खेल रहे थे। यह सब उन्हीं परमपिता का खेल है।'

ऐसे ब्रह्मनिष्ठ संतों को सामान्य बुद्धि, भौतिक दृष्टि से न तो समझा जा सकता है, न ही जाना-पहचाना जा सकता है। ब्रह्म के प्रेम में पागल कोई घायल व्यक्ति ही इसे समझ सकता है। जैसा कि कहा गया है—'घायल की गति घायल ही जाने।' स्वामी विवेकानंद ने अपनी ब्रह्मदृष्टि से देख-समझ लिया था कि ये फकीर, दीखने में सामान्य हैं; पर आत्मिक तल पर वे कितने असाधारण हैं। स्वयं विवेकानंद को भी तो उनके गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस देव ने अपनी ब्रह्मदृष्टि से पलभर में ही और पहली मुलाकात में ही पहचान लिया था।

जब स्वामी विवेकानंद, नरेंद्र रूप में पहली बार दक्षिणेश्वर काली मंदिर में श्रीरामकृष्ण से मिलने आए थे, तब उनके बारे में ठाकुर रामकृष्ण परमहंस ने कहा था—''नरेंद्र ने पश्चिमी द्वार से कमरे में प्रवेश किया। न तो वेशभूषा या शरीर की ओर उसका ध्यान था और न ही संसार के प्रति आकर्षण। आँखों में अंतर्मुखता स्पष्ट झलक रही थी और ऐसा लगता था मानो मन का एक अंश सदा ही कहीं भीतर ध्यानमग्न हो। कलकत्ते के भौतिकवादी वातावरण से इस प्रकार आध्यात्मिक चेतनासंपन्न व्यक्ति के आगमन से मैं चकित रह गया।''

वास्तव में एक ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति की दृष्टि में जाति-पंथ, मजहब की सारी दीवारें ढह जाती हैं और सर्वत्र उसे ब्रह्म का ही अस्तित्व दीख पड़ता है। एक ऐसी ही घटना सन् 1899 की है; जब स्वामी विवेकानंद राजस्थान में माउंट आबू में नक्की झील के किनारे एक गुफा में ठहरे। बाद में एक मुसलमान वकील के आग्रह पर वे उसके घर पर रहने के लिए चले गए। कुछ दिनों बाद उस वकील ने महाराजा खेतड़ी के व्यक्तिगत सचिव मुंशी जगमोहन लाल को स्वामी जी से मिलने के लिए आमंत्रित किया। जब मुंशी जी ने स्वामी जी से उनके एक मुसलमान के घर ठहरने के औचित्य पर प्रश्न किया; क्योंकि वहाँ रहने पर मुसलमान द्वारा उनके भोजन का स्पर्श होना अनिवार्य था, तब स्वामी जी ने कहा—''महाशय! आप क्या कहते हैं? मैं एक भंगी के साथ भी भोजन कर सकता हूँ। मैं सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन करता हूँ, क्षुद्रतम जीव में भी मैं ब्रह्म को देखता हूँ और फिर सभी उपासनाओं का सार भी तो यही है कि हम पावन, पुनीत, पवित्र, निर्मल, निश्छल, निष्कपट और निर्दोष बनें।''

सचमुच जिसका मन, जिसका चित्त पावन है—वही परमात्मा को पाने का, उनके प्रेम को पाने का अधिकारी है। जो हर जीव में, दीन-दुःखी, दुर्बल में अपने आराध्य को देखता है, ब्रह्म को देखता है और उनकी सेवा करता है; वास्तव में वही सच्चा ईश्वरभक्त है, गुरुभक्त है। अपने आराध्य को, भगवान को, गुरु को—मंदिरों में, मसजिदों में, गिरजाघरों में, मूर्तियों में, पत्थरों में देखना अच्छी बात है; पर जो भगवान मंदिरों और गिरजाघरों में है, वही सृष्टि के कण-कण में, हर जीव में संव्याप्त है। यह संपूर्ण सृष्टि ही ईश्वर का बनाया हुआ देवालय है, गिरजाघर है, मसजिद है, गुरुद्वारा है और हर जीव ही ईश्वर के द्वारा निर्मित देवप्रतिमा है, देवमूर्ति है अतः जीवसेवा ही शिवसेवा है, नरसेवा ही नारायणसेवा है, मानवसेवा ही माधवसेवा है। इस संदर्भ में युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने ठीक ही कहा है—'ईश्वर बंद नहीं है मठ में, वह तो व्याप रहा घट-घट में।' स्वामी विवेकानंद ने भी अपनी इस कविता की प्रस्तुत पंक्तियों में कुछ ऐसी ही भाव-प्रेरणा दी है—

बहु रूपों में खड़े तुम्हारे आगे,
और कहाँ है ईश?
व्यर्थ खोज यह जीव प्रेम की ही,
सेवा पाते जगदीश। ❑

यूनान और फारस के बीच युद्ध चल रहा था। यूनानी बड़ी वीरता से लड़ रहे थे, पर देवी के मंदिर के पुजारी की, फारस देशवालों के लिए जासूसी करने के कारण वे हार रहे थे। यह बात पता चलने पर यूनान की न्यायसभा न्याय करने जुटी। पुजारी ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और न्यायमूर्ति के सम्मुख क्षमा-याचना की।

सभा में विचार होने लगा। इतने में एक बूढ़ी औरत सभा के सम्मुख आकर बोली—''समय अधिक सोच-विचार का नहीं है। यह दोबारा देशद्रोह नहीं करेगा, इसका क्या भरोसा? छोड़ देने से तो दूसरों को भी प्रोत्साहन मिलेगा। इसे तुरंत प्राणदंड मिलना चाहिए। यह मेरा पुत्र है; लेकिन पुत्रप्रेम से अधिक मैं देशप्रेम को महत्त्व देती हूँ।'' वास्तव में आदर्श नागरिक के लिए राष्ट्र व समाज के समक्ष अपनी संतान भी कुछ नहीं के समान है। राष्ट्र के सम्मुख मोह नहीं, कर्त्तव्य की जीत होनी चाहिए।

एकात्म मानववाद

पंडित दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण राष्ट्र को एक परिवार के रूप में पिरोना चाहते थे। भारत को एक राष्ट्र के रूप में और यहाँ के निवासियों को नागरिक नहीं अपितु परिवार के सदस्य के रूप में मानने के विस्तृत दृष्टिकोण का अर्थ स्थापित करना चाहते थे। यही पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद का सिद्धांत है। अपने एकात्म मानववाद को दीनदयाल जी सैद्धांतिक स्वरूप में नहीं, बल्कि आस्था के स्वरूप में लेते थे। इसे उन्होंने राजनीतिक सिद्धांत के रूप में नहीं; बल्कि हार्दिक भाव के रूप में जन्म दिया था।

अपने एकात्म मानववाद के अर्थों को विस्तारित करते हुए ही उन्होंने कहा था—''हमारी आत्मा ने अँगरेजी राज्य के प्रति विद्रोह केवल इसलिए नहीं किया कि दिल्ली में बैठकर राज करने वाले विदेशी थे, अपितु इसलिए भी कि हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में, हमारे जीवन की गति में विदेशी पद्धतियाँ और रीति-रिवाज, विदेशी दृष्टिकोण और आदर्श अड़ंगा लगा रहे थे। हमारे संपूर्ण वातावरण को दूषित कर रहे थे, हमारे लिए साँस लेना भी दूभर हो गया था। आज यदि दिल्ली का शासनकर्त्ता अँगरेज के स्थान पर हममें से ही एक, हमारे ही रक्त और मांस का एक अंश हो गया है तो हमको इसका हर्ष है, संतोष है; किंतु हम चाहते हैं कि उसकी भावनाएँ और कामनाएँ भी हमारी भावनाएँ और कामनाएँ हों। जिस देश की मिट्टी से उसका शरीर बना है, उसके प्रत्येक रजकण का इतिहास उसके शरीर के कण-कण से प्रतिध्वनित होना चाहिए।''

सर्वाधिक सूक्ष्म बोधवाक्य 'जियो और जीने दो' को 'जीने दो और जियो' के क्रम में रखने के देवत्वपूर्ण आचरण की सोच के कारण वे भारतीय राजनीति विज्ञान के उत्कर्ष का एक नया क्रम स्थापित कर गए। व्यक्ति की आत्मा को सर्वोपरि स्थान पर रखने वाले उनके सिद्धांत में आत्मबोध करने वाले व्यक्ति को समाज का शीर्ष माना गया। आत्मबोध के भाव से उत्कर्ष करता हुआ व्यक्ति 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के भाव से जब अपनी रचनाधर्मिता और उत्पादन-क्षमता का पूर्ण उपयोग करे तब ही एकात्म मानववाद का उदय होता है—वे ऐसा मानते थे। देश और नागरिकता जैसे अधिकारिक शब्दों के संदर्भ में यहाँ यह तथ्य पुनःमुखरित होता है कि उपरोक्त वर्णित व्यक्ति देश का नागरिक नहीं; बल्कि राष्ट्र का सेवक होता है।

पाश्चात्य का भौतिकवादी विचार जब अपने चरम की ओर बढ़ने की पूर्व दशा में था, तब उन्होंने इस प्रकार के विचार को सामने रखकर वस्तुतः पश्चिम से वैचारिक युद्ध का शंखनाद किया था। उस दौर में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वैश्विक स्तर पर विचारों और अभिव्यंजनाओं की स्थापना, मंडन-खंडन और भंजन की परस्पर होड़ चल रही थी। विश्व—मार्क्सवाद, फासीवाद, अति उत्पादकता का दौर देख चुका था और महामंदी के ग्रहण को भी भोग चुका था। वैश्विक सिद्धांतों और विचारों में अभिजात्य और नवअभिजात्य की सीमारेखा आकार ले चुकी थी, तब संपूर्ण विश्व में भारत की ओर से किसी राजनीतिक सिद्धांत के जन्म की बात को किंचित् असंभव और इससे भी बढ़कर हास्यास्पद ही माना जाता था। अपनी संकुचित सोच के कारण लोग यह मानने को तैयार ही नहीं होते थे कि भारत से कोई प्रगतिशील सोच जन्म ले सकती है।

अँगरेज शासनकाल और अँगरेजोत्तर काल में भी हम वैश्विक मंचों पर हेय दृष्टि से और विचारहीन दृष्टि से देखे और माने जाते थे। निश्चित तौर पर हमारा स्वतंत्रोत्तर शासक वर्ग या राजनीतिक नेतृत्व जिस प्रकार पाश्चात्य शैलियों, पद्धतियों, नीतियों में डूबा, फँसा और मोहित रहा उससे यह हास्य और हेय भाव और भी बड़ा आकार लेता चला गया था। तब उस दौर में दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानवता के सिद्धांत की गौरवपूर्ण रचना और उद्घोषणा की थी। 1940 और 1950 के दशकों में विश्व में मार्क्सवाद से प्रभावित और लेनिन के साम्राज्यवाद से जनित 'निर्भरता का सिद्धांत' राजनीतिक शैली हो चला था।

'निर्भरता का सिद्धांत' यह है कि संसाधन निर्धन या अविकसित देशों से विकसित देशों की ओर प्रवाहित होते हैं और यह प्रवाह निर्धन देशों को और अधिक निर्धन करते हुए धनवान देशों को और अधिक धनवान बनाता है। इस सिद्धांत से यह तथ्य जन्म ले चुका था कि राजनीति में अर्थनीति का व्यापक समावेश होना ही चाहिए। संभवत: पंडित दीनदयाल जी ने इस सिद्धांत के उस मर्म को समझा, जिसे पश्चिमी जगत कभी समझ नहीं पाया। पंडित जी ने निर्भरता के इस शब्दों वाले कोरे सिद्धांत में मानववाद नामक आत्मा की स्थापना की और इसमें से भौतिकवाद के जिन्न को बाहर ला फेंका।

राजनीति को अर्थनीति के साथ महीन रेशों से गूँथ देना और इसके समन्वय से एक नवसमाज के नवांकुर को रोपना और सींचना यही उनका मानववाद था। वे चाहते थे भौतिकता से दूर; किंतु मानव के श्रेष्ठतम का उपयोग और उससे सर्वाधिक उत्पादन। फिर उत्पादन का राष्ट्रहित में उपयोग और राष्ट्रहित से अंत्योदय का ईश्वरीय कार्य, यही एकात्म मानववाद का चरम हितकारी रूप है। इस परिप्रेक्ष्य का अग्रिम रूप देखें तो स्पष्ट होता है कि उनके अर्थ के प्रभाव के माध्यम से वे विश्व की राजनीति में किस महत्त्वपूर्ण तत्त्व का प्रवेश करा देना चाहते थे।

यद्यपि उनके असमय निधन से विश्व की राजनीति उस समय उनके इस प्रयोग के कार्यरूप देखने से वंचित रह गई तथापि सिद्धांत रूप में तो वे उसे स्थापित कर ही गए थे। उस दौर में विश्व की सभी सभ्यताएँ और राजनीतिक प्रतिष्ठान धन की अधिकता और धन की कमी से उत्पन्न होने वाली समस्याओं से संघर्ष कर रहे थे। तब उन्होंने भारतीय दर्शन पर आधारित व्यवस्थाओं के आधार पर धन के अर्जन और उसके वितरण की व्यवस्थाओं का परिचय शेष विश्व के सम्मुख रखा। उस दौर में पूर्वाग्रही और दुराग्रही राजनीति के कारण उनकी आर्थिक स्वातंत्र्य की सीमा की अवधारणा को देखा, पढ़ा नहीं गया; किंतु आर्थिक विवेक के उनके सिद्धांत को भारतीय अर्थतंत्र में यदा-कदा पढ़ने-सुनने और व्यवहार में लाने के प्रयास भी होते रहे, यद्यपि इन प्रयासों में पंडित जी के नाम से परहेज करने का पूर्वाग्रह यथावत् चलता रहा।

नागरिकता से परे होकर 'राष्ट्र एक परिवार' के भाव को आत्मा में विराजित करना और तब ही परमात्मा की ओर आशा से देखना यह उनकी एकात्मता का शब्दार्थ है। इस रूप में हम राष्ट्रनिर्माण ही नहीं, अपितु उस परम वैभव की ओर भी जाएँ—यह भाव उनके सिद्धांत के एक शब्द 'एकात्मता' में प्राण स्थापित करता है। मानववाद वह है, जो ऐसी प्राणवान आत्मा से निस्सृत होकर एक शक्तिपुंज के रूप में सर्वत्र राष्ट्रभर में मुक्तभाव से बहे अर्थात अपनी क्षमता से और प्राणपण से उत्पादन करे और राष्ट्र को समर्पित भाव से अर्पित कर दे एवं स्वयं भी सामंजस्य और परिवार बोध से उपभोग करता हुआ विकास-पथ की ओर अग्रसर रहे। एकात्मता में सराबोर होकर मानववाद की ओर बढ़ता यह एकात्म मानववाद—अपने इस ईश्वरीय भाव के कारण ही अंत्योदय जैसे परोपकारी राज्य के भाव को जन्म दे पाया।

हम इस चराचर ब्रह्मांड या पृथ्वी पर आधारित रहे, इसका दोहन नहीं; बल्कि पुत्रभाव से उपयोग करें, किंतु इससे प्राप्त संसाधनों को मानवीय आधार पर वितरण की न्यायसंगत व्यवस्थाओं को समर्पित करते चलें, यह अंत्योदय का प्रारंभ है। अंत्योदय का चरम वह है, जिसमें व्यक्ति एकदूसरे से परस्पर जुड़ा हो और निर्भर भी अवश्य हो; किंतु उसमें निर्भरता का भाव न कभी हेय दृष्टि से आए और न कभी देय दृष्टि से। इस प्रकार के अंत्योदय का भाव पं० दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद के सहउत्पाद के रूप में जन्मा, जिसे सहउत्पाद के स्थान पर उस सिद्धांत का पुण्यप्रसाद कहना अधिक उपयुक्त होगा।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय संस्कृति के समग्र रूप को मानव और राज्य में स्थापित देखना चाहते थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति की समग्रता और सार्वभौमिकता के तत्त्वों को पहचानकर आधुनिक संदर्भों में इसके नूतन रूपकों, प्रतीकों, शिल्पों की कल्पना की थी। उनके विषय में अध्ययन करते समय हमारी अंतर्दृष्टि में वंचित भाव जाग्रत होता है और यह तथ्य उच्चारित होता रहता है कि उनके तत्त्व ज्ञान में कुछ ऐसा अभिनव प्रयोग आ चुका था; जिसे वे शब्द रूप में या कृति रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाए और काल के शिकार हो गए। उनके मस्तिष्क में या वैचारिक गर्भ में कोई अभिनव और नूतन सिद्धांतरूपी शिशु था, जो उनके असमय निधन से अजन्मा और अव्यक्त ही रह गया है। कालक्रम में उनका वह सूत्र-सिद्धांत किसी को माध्यम बनाकर अवश्य ही अभिव्यक्त होगा। राष्ट्र समग्ररूप से एक होगा और उसकी आत्मा विकसित होगी। ❑

बदलाव माँगती शिक्षापद्धति

आज हमारे समाज में शिक्षा एक जरूरी संस्था का स्थान ले चुकी है। अत: शिक्षा किसलिए हो या उसका क्या उद्देश्य हो, यह प्रश्न समाज और व्यक्ति के जीवन के संदर्भ में उठना स्वाभाविक है। आज हमारी शिक्षा अपने परिवेश व संस्कृति से कटती जा रही है; क्योंकि जिस शिक्षा से समाज व संस्कृति का पोषण होना चाहिए, आज वह अपने उद्देश्य से कोसों दूर है। यदि शिक्षा की तत्कालीन व्यवस्था के बीच कोई अच्छा पढ़-लिख जाता है, तो वह एक तरह से किसी बड़ी यांत्रिक व्यवस्था के उपकरण के रूप में ढल जाता है। प्रतिस्पर्धा की दुनिया में उसका उद्देश्य मात्र सफलता, उपलब्धि और भौतिक प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ने तक ही सीमित हो जाता है। इस तरह आजकल की शिक्षापद्धति विद्यार्थियों के मानस को एक तरह से संकुचित करने का कार्य कर रही है।

आज शिक्षा एक तरह से व्यापार बनती जा रही है। विद्यालयों के साथ समाज का तारतम्य नहीं बन पा रहा है और इसमें जनभागीदारी भी बहुत सीमित है। आज सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति तो हो रही है, पर इन सबके बीच में इनसान खो गया है। आधुनिक शिक्षापद्धति के द्वारा हम किधर एवं क्यों जा रहे हैं ? यह विचारणीय प्रश्न है।

पहले हमारे देश में कई तरह के विद्यालय चल रहे थे। यहाँ प्राचीनकाल में गुरुकुल, पाठशाला और मदरसा मौजूद थे। अँगरेज अधिकारियों के भारत में आने के बाद उन्होंने भारतीय शिक्षापद्धति के बारे में जो रिपोर्ट अपने प्रशासन के लिए लिखी, वह आश्चर्यजनक रूप से इसकी अच्छी स्थिति को प्रदर्शित करती है। उनकी नजरों में तब भारतीय शिक्षापद्धति अपनी संस्कृति से जुड़ी हुई थी। बाद के दिनों में कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा संस्कृति पर ध्यान देने की बात की गई और उसके द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि कार्यक्षेत्र, शिक्षा, घर, परिवार, व्यक्ति और समाज के बीच कोई द्वंद्व नहीं होना चाहिए।

महात्मा गांधी ने भी 'नई तालीम' का विचार दिया था, जिसमें शरीर, हाथ, बुद्धि सबका संतुलन होता था और इसके लिए उन्होंने स्थानीय संसाधन के उपयोग का सुझाव दिया था, जिसमें मात्र बौद्धिकता पर बल न देकर शरीर, मन, आत्मा सब पर ध्यान देने की बात कही गई। इसके अंतर्गत स्वावलंबन, देशभक्ति, आत्मसंपन्नता और संयम जैसे जीवनमूल्यों पर बल देना प्रस्तावित था।

इसी तरह से राष्ट्रकवि रवींद्रनाथ टैगोर ने भी शांतिनिकेतन बनाया था। रुक्मिणी देवी अरुण्डेल, एनी बेसेंट और जे. कृष्णमूर्ति ने भी अलग-अलग तरह से प्रयास किए। इन सब प्रयासों में जीवन कौशल और कला पर पर्याप्त बल दिया गया था; ताकि विद्यार्थियों को अपने आस-पास की दुनिया से जुड़ने का भी अवसर मिले। उनका मानना था कि समग्र व्यक्तित्व के विकास के लिए विद्यार्थियों को ऐसे प्राचीन और नए हुनर आने चाहिए, जो संस्कृतिविशिष्ट होते हों।

दुर्भाग्यवश वर्तमान में शिक्षा का जो परिदृश्य है, उसमें शिक्षा का मॉडल विदेशों से लाकर देश में प्रत्यारोपित किया जा रहा है, जिसके कारण यह प्रक्रिया भारतीय मूल्यों को अपनी जड़ों से विस्थापित कर रही है। आर्थिक संपन्नता से सांस्कृतिक विपन्नता की भरपाई नहीं हो सकती। नैतिक मूल्यों का अभाव, तनाव, द्वंद्व, हिंसा और असहनशीलता का जो स्वभाव आज हमारे समाज में देखने को मिल रहा है, उसके लिए हमारी शिक्षापद्धति ही जिम्मेदार है; क्योंकि शिक्षापद्धति ही हमारे विचारों को नया आयाम देती है, उसे नई दिशा देती है और जीवन जीने की राह में अपनी अहम भूमिका निभाती है।

मनुष्यता के विकास के लिए संस्कृति आधारित शिक्षा के अतिरिक्त और कोई भी विकल्प नहीं है। भारतीय संस्कृति की दृष्टि में अच्छी दुनिया वही है, जिसमें बहुलता, पारस्परिकता और सहअस्तित्व हो, लेकिन जब औपनिवेशिक शक्तियों की भाषा ने ही हम पर अपना अधिकार जमा लिया हो, तो इस सांस्कृतिक क्षति के कारण हम बोलने और सोचने को लेकर विभाजित व्यक्तित्व वाले होते जा रहे हैं। भारत के अधिकांश बच्चे केवल अँगरेजी भाषा ठीक से न

समझ पाने के कारण आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रसित हो जाते हैं, और कई तो अपनी पढ़ाई ही अधूरी छोड़ने को विवश हो जाते हैं। जो पढ़-लिख लेते हैं, वो सरकारी नौकरी या अच्छी नौकरी पाने के चक्कर में अपने कई साल यों ही साक्षात्कार देते हुए या प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने में बिता देते हैं।

आज देश में बढ़ती बेरोजगारी का कारण जनसंख्या वृद्धि नहीं, अपितु हमारी शिक्षापद्धति है, जो विद्यार्थियों को आर्थिक संपन्नता के लिए स्वावलंबन के बजाय परावलंबन सिखाती है। हमारी सामाजिक व्यवस्था भी बेरोजगारी को बढ़ाने में सहयोगी है, जो युवाशक्ति का ठीक तरह से नियोजन नहीं कर पा रही, उन्हें आर्थिक संपन्नता हेतु पर्याप्त अवसर नहीं दे पा रही। हमारे समाज में आरक्षण के चलते कई प्रतिभाएँ मन मसोसकर रह जाती हैं और वे जीवन में आगे भी नहीं बढ़ पातीं।

चीन के सबसे अमीर व्यक्ति जैक मा ने कुछ समय पहले ही विश्व आर्थिक मंच पर यह कहा था कि आर्थिक तरक्की जारी रखने के लिए हमें अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी होगी कि वे मशीनों से मुकाबला कर सकें। उनके अनुसार—शिक्षा में सुधार इसलिए भी जरूरी है; क्योंकि आर्टिफिशियल इंटेलिजेन्स का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है।

शिक्षा में सुधार को लेकर भारत को इसलिए भी अधिक सक्रियता दिखाने की जरूरत है; क्योंकि इसके जरिए ही भारत आर्थिक रूप से सशक्त हो सकता है, नैतिक व आध्यात्मिक बल से समृद्ध हो सकता है और अपने भारतीय ज्ञान के द्वारा आत्मबल से संपन्न हो सकता है। यदि ऐसा हो सका तो भारत पर फिर अन्य किसी विदेशी सत्ता का शासन नहीं होगा, अपितु भारत का वर्चस्व इतना बढ़ेगा कि वह अन्य देशों के दिलों में अपना राज कर सकेगा। ❑

बंगाल के बंकिम बाबू अँगरेजी सरकार में उच्च ओहदे पर डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। उन्होंने साथ ही एक-से-एक अधिक प्राणवान पुस्तकों का बँगला में सृजन किया है, किंतु उन सबमें 'आनंदमठ' उनकी विशेष कृति है। इससे उन्होंने राष्ट्र स्वातंत्र्य हेतु योजनाबद्ध क्रांति का एक व्यावहारिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। मंदिर युग के खंडहरों में क्रांतिकारी साधुवेश में निवास करते थे। इस प्रकार उनकी भोजन और निवास की गुत्थी सुलझ जाती थी और मंदिर-मठों पर शासन को भी उतना संदेह नहीं होता था। दिन में देश का प्रचार और रात्रि में आक्रमण का क्रम चलता था। इस कार्य में उन्हें भावनाशील जनता की जहाँ सहायता मिलती थी, वहाँ पता चल जाने पर शासन द्वारा त्रास भी कम नहीं दिया जाता।

इस प्रकार योजना का सांगोपांग स्वरूप प्रस्तुत करके प्रकारांतर से भारत के वातावरण में क्रांति की सफलता का एक अच्छा मार्गदर्शन किया। उसके अनुरूप अनेक स्थानों पर प्रयास हुए भी। 'आनंदमठ' को सरकार ने जब्त कर लिया। फिर भी भारत की सभी भाषाओं में उसके अनुवाद होते रहे। क्रांतिकारी आंदोलन की जड़ यहीं से जमी व पनपी।

भारत के गुफा मंदिरों का रोचक एवं विलक्षण संसार

विश्व में चट्टानों को काटकर या तराशकर बनाई गई गुफाओं की कमी नहीं, लेकिन इनसे जुड़े आध्यात्मिक भाव, ऐतिहासिक महत्त्व एवं कलात्मक-स्थापत्य विशेषताएँ जो भारत में बने गुफा मंदिरों में निहित हैं, उनका कोई सानी नहीं। रॉक कट स्थापत्य जितना भारत में प्रचलित रहा है, उतना शायद ही विश्व के किसी कोने में रहा हो। यह भारत के प्राचीन कलाकारों की अविश्वसनीय उपलब्धियों का प्रतिनिधित्व करता है। आश्चर्य नहीं कि अंतरराष्ट्रीय संगठन यूनेस्को द्वारा इनमें से कई गुफा मंदिरों को वैश्विक सांस्कृतिक धरोहरों के रूप में सम्मानित किया गया है।

प्रस्तुत है ऐसे ही कुछ उल्लेखनीय गुफा मंदिरों के रोचक एवं विलक्षण संसार का विहंगावलोकन करती एक भावयात्रा; जो शायद जिज्ञासुओं, कला एवं संस्कृतिप्रेमी घुम्मकड़ों को अर्थपूर्ण एवं रोमांचक यात्रा तथा अध्ययन के लिए प्रेरित करे और साथ ही अपनी गौरवपूर्ण प्राचीन कलात्मक एवं तकनीकी विरासत के प्रति गौरवभाव को जगाए।

भारत की सबसे प्राचीन रॉक कट गुफाएँ बिहार की बाराबर गुफाएँ हैं, जिनका निर्माण तीसरी सदी ईसा पूर्व प्रारंभ हो गया था, जिन्हें अधिकांशत: 322 से 185 ईसा पूर्व मौर्यकाल में पूरा किया गया। कुछ में अशोक के शिलालेख भी निहित हैं। ये बिहार में गया से 20 किमी की दूरी पर स्थित हैं। बृहत् ग्रेनाइट चट्टानों से तराशी गईं इन गुफाओं को देखकर लगता है कि जैसे ये लेजर से तराशी गई हों। मूलत: ये गुफाएँ बौद्ध धर्म से जुड़ी रहीं, लेकिन जैन धर्म की गुफाएँ भी यहाँ विद्यमान हैं, जो उस काल की धार्मिक सहिष्णुता को उजागर करती हैं। इन्हें बौद्ध भिक्षुओं एवं जैन साधकों द्वारा पूजा एवं आवास केंद्र के रूप में प्रयुक्त किया गया था।

मुंबई के इंडिया गेट से दस किमी दूर टापू पर स्थित ऐलिफेंटा गुफाएँ भी स्वयं में उल्लेखनीय हैं, जो प्रमुखतया शिव को समर्पित हैं, जिन्हें हिंदू कालाचुरी राजाओं द्वारा मध्य छठी शताब्दी तक तैयार किया गया था। इन गुफाओं में निर्मित अद्‌भुत एवं विशाल चैंबर के बारे में अधिक जानकारियाँ नहीं हैं, लेकिन इन गुफा मंदिरों में उकेरा गया कालजयी एवं विलक्षण कलात्मक कौशल प्राचीन कलाविदों की अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय अवश्य देता है।

इस टापू में पाँच हिंदू तथा दो बौद्ध मंदिर हैं। इनमें सबसे रोचक एवं प्रभावशाली महान गुफा है, जिसमें कलात्मक गुणवत्ता से भरपूर कई संरचनाओं के बीच 6.1 मीटर ऊँची भगवान शिव की प्रख्यात त्रिमूर्ति उल्लेखनीय एवं दर्शनीय है। साथ ही यहाँ अर्द्धनारीश्वर, रावण द्वारा कैलास पर्वत को ले जाते हुए तथा नटराज शिव की उल्लेखनीय छवियाँ दिखाई गई हैं। इस टापू का नाम मूलत: धारापुरी था, जिसे पुर्तगालियों द्वारा एलिफेंटा नाम दिया, क्योंकि उन्हें यहाँ पहुँचने पर पत्थर के बड़े हाथी दिखे थे।

उदयगिरि एवं खंडागिरि की समीपस्थ दो पहाड़ियों में 27 रॉक कट जैन मंदिर बने हुए हैं, जिन्हें पहली सदी ईसा पूर्व की माना जाता है। उड़ीसा में भुवनेश्वर के समीप स्थित ये गुफाएँ कुछ प्राकृतिक हैं, तो कुछ तराशी गई हैं और ये ऐतिहासिक, धार्मिक एवं स्थापत्य की दृष्टि से खासा महत्त्व रखती हैं। ये दो पहाड़ियाँ पूर्वी भारत के स्थापत्य, कला एवं धर्म-क्षेत्र में जैन रॉक कट स्थापत्य के सबसे प्राचीन समूह का प्रतिनिधित्व करती हैं।

अभिलेखों के आधार पर स्पष्ट होता है कि ये गुफाएँ कलिंग के प्रसिद्ध राजा खारवेल द्वारा सर्वप्रथम तराशी गई थीं और उसके उपरांत प्रथम ईसा पूर्व काल में उसके जैनभक्त शासकों द्वारा यह कार्य आगे बढ़ाया गया। इनमें से आज कुछ में हिंदू मंदिर हैं। गुफाओं में सबसे प्रभावी है रानी गुफा (न.1), जो अद्‌भुत नक्काशीवाली दो मंजिला संरचना है। इसी तरह गणेश गुफा (न.10) भी उल्लेखनीय है। व्याघ्र गुफा (न.12) का द्वार अद्‌भुत एवं दर्शनीय है। हाथी गुफा (न.14) राजा खारवेल के शासन की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारियों से भरी है।

कान्हेरी गुफाएँ, मुंबई शहर के बाहर स्थित संजय गांधी राष्ट्रीय पार्क के जंगल में स्थित अद्भुत एवं दर्शनीय 109 गुफाओं का समूह है, जिन्हें बौद्ध मंदिर एवं मठ के रूप में प्रथम सदी ईसा पूर्व से नौवीं ईसवी तक तराशा गया। आज तो ये मुंबई शहर के छोर पर स्थित हैं, लेकिन 2000 वर्ष पूर्व यह प्राचीन व्यावसायिक मार्ग पर एक खतरनाक स्थल रहा होगा।

जब बौद्ध भिक्षुओं ने वीरान जंगलों में बनी इन गुफाओं में रहना प्रारंभ किया, तो व्यापारियों को राहत मिली और उन्होंने फिर वसाल्ट चट्टानों को काटकर कमरे तराशने शुरू किए। सबसे महत्त्वपूर्ण कलात्मक कार्य यहाँ पाँचवीं एवं छठी शताब्दी के बीच हुए, जब इन गुफाओं को मौर्य एवं कुशाणकाल में शिक्षा के प्रमुख केंद्र के रूप में विकसित किया गया। यहाँ की गुफा नं.3 में सात मीटर ऊँची बुद्ध भगवान की प्रतिमा दर्शनीय है। यहाँ की अधिकांश गुफाएँ मठ का हिस्सा रही होंगी; जहाँ रहने, अध्ययन करने व ध्यान करने की व्यवस्था थी। पूजा के लिए यहाँ चट्टानों को काटकर बनाए गए स्तूप भी हैं।

बादामी गुफा मंदिर, चालुक्य राजाओं द्वारा छठी-सातवीं सदी में अपनी सत्ता की शक्ति के प्रतीक के रूप में बनाए गए थे। इनको शक्तिशाली शासकों की नवनिर्मित राजधानी में निर्मित किया गया था। यहाँ चार गुफा मंदिर हैं, जिनमें तीन हिंदू तथा एक जैन मंदिर है। ये गुफा मंदिर बहुत सजावटयुक्त हैं, जो भारतीय कला एवं वास्तुशिल्प में चालुक्य शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके भित्तिचित्रों में की गई बारीक कारीगरी इस काल की संस्कृति पर बखूबी प्रकाश डालती है। बादामी गुफाएँ शासकों की धार्मिक सहिष्णुता को दरसाती हैं, जिसमें हिंदू, बौद्ध एवं जैन धर्म साथ-साथ पनपे। गुफा 1 भगवान शिव के लिए समर्पित है, गुफा 2 और 3 भगवान विष्णु के लिए तथा गुफा 4 में जैन मंदिर है।

भाजा गुफाएँ, 22 गुफाओं का समूह है, जो दो सौ ईसा पूर्व निर्मित की गई थीं व ये बौद्ध धर्म को समर्पित हैं। महाराष्ट्र पुणे में लोनावाला के समीप स्थित इन गुफाओं में सबसे दर्शनीय बृहत् चैत्यगृह, एक प्रार्थना कक्ष तथा एक कोने में बना स्तूप है। यहाँ की अन्य उल्लेखनीय संरचना 14 स्तूपों का समूह है, जिसमें 5 अंदर हैं तो 9 बाहर। इनमें गुफा नंबर 12 सबसे प्रभावशाली है, यह भारत का सबसे बड़ा चट्टानों से निर्मित मंदिर है।

मशहूर रॉक कट मंदिर, काँगड़ा, आठवीं और नौवीं सदी में काँगड़ा घाटी के सेंडस्टोन (बलुआ पत्थर) रिज को तराशकर पिरामिड आकार के दर्जनों मंदिर तैयार किए गए, जिनमें जटिल नक्काशी की गई है। एक चट्टान से तराशे मंदिर समूह के कारण इसे मिनी एलोरा भी कहा जाता है। इनके सामने एक बहुत बड़ा 50 मीटर लंबा तालाब है, जिसमें मंदिर का अक्स परछाईं के रूप में सदा दीखता रहता है। संभवत: यह भारतीय नागरशैली के स्थापत्य का प्राचीनतम नमूना है। सन् 1905 के भयावह काँगड़ा भूकंप में माना जाता है कि मंदिर का कुछ हिस्सा क्षतिग्रस्त हो गया था।

महाबलीपुरम के पंचरथ भी दक्षिण भारत की स्वयं में अद्भुत संरचनाएँ हैं। चट्टानों से तराशे गए मंदिर एवं पशुओं के (शेर, हाथी, नंदी) स्थापत्य नमूने एक ही चट्टान से तराशे गए हैं, जिनको सातवीं सदी का माना जाता है। यह प्राचीन पल्लव साम्राज्य की प्राचीन मंदिर नगरी महाबलीपुरम के नाम से प्रख्यात है। पंचरथ रॉक कट स्थापत्य का यह एक बहुत ही दुर्लभ उदाहरण है; जहाँ भवन का बाहरी एवं आंतरिक भाग—सब एक ही चट्टान से तराशे गए हैं।

कार्ला गुफाएँ, महाराष्ट्र के लोनावाला में स्थित भारत के सबसे प्राचीन गुफा मंदिरों में से हैं तथा हिंदू और बौद्ध गुफा स्थापत्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये भारत के सबसे विलक्षण रॉक कट चैत्य हैं। बौद्ध धर्म को समर्पित इन गुफाओं का निर्माण 120 ईसा पूर्व किया गया, जो दूसरी सदी ईसवी तक चलता रहा। कुछ कार्य पाँचवीं से दसवीं सदी तक चले। हालाँकि इनकी कालावधि प्राचीन है, लेकिन इनकी कलात्मक बारीकियाँ बहुत उन्नत किस्म की हैं; जो प्राचीनकला के श्रेष्ठ उदाहरणों में से हैं।

यहाँ पर भारत का सबसे बड़ा रॉक कट हाल बना है; जिसे पहली सदी ईसा पूर्व बनाया गया था, जो 45 मीटर लंबा एवं 14 मीटर ऊँचा है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि यह रचना कई हजार वर्ष बाद बने ईसाई केथेड्रल के लिए सृजन-प्रेरणा रही होगी। इन गुफाओं की सीलिंग लकड़ी की बनी हैं, जिन्हें 2000 वर्ष पूर्व काटा गया था और वे आज भी संरक्षित हैं।

अजंता गुफाएँ 29 गुफाओं की एक माला है, जिन्हें दो चरणों में, क्रमश: दूसरी सदी ईसा पूर्व एवं छठी शताब्दी में बनाया गया। अजंता गुफाओं को वघोरा नदी के किनारे

एक ठोस चट्टान से तराशा गया है। यूनेस्को द्वारा इन्हें वर्ल्ड हेरिटेज साइट घोषित किया गया है और ये आर्कियलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया द्वारा भी संरक्षित हैं। अजंता गुफाएँ भारत में बौद्धकला के उत्कृष्टतम नमूनों में से एक हैं। ये गुफाएँ 650 ईसवी से खाली रहीं व सन् 1819 में एक अँगरेज अफसर द्वारा इनको खोजा गया।

ये गुफाएँ इस क्षेत्र में प्राचीनकला की समृद्धतम विरासत को लिए हुए हैं और मानवता की अभूतपूर्व उपलब्धियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। लगभग 1200 वर्षों की गुमनामी के बाद जब इन गुफाओं को खोजा गया तो इनके स्थापत्य ने यूरोपीय एवं अमेरिकी कला को गहराई से प्रभावित किया, वहाँ के कई कलाकार तो अजंता गुफाओं की पेंटिंग एवं मूर्तियों के जैसे दीवाने ही हो गए।

ये गुफाएँ इंजीनियरिंग की अद्भुत उपलब्धियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। कुछ गुफाओं के बिना किसी खंभे की सहायता से बने हॉल बॉस्केट बाल मैदान जितने बड़े हैं और पिछले 1500 वर्षों से बिना किसी परिवर्तन के यथावत् स्थिर हैं। इन गुफाओं में जहाँ एक ओर दूसरी सदी ईसा पूर्व में बनी सबसे पुरानी भारतीय पेंटिंग हैं, तो वहीं गुफा 17 में भारत की कुछ सर्वश्रेष्ठ गुफा पेंटिंग भी मौजूद हैं।

ऐलोरा गुफाएँ—निर्माण कौशल एवं कलात्मक दृष्टि से मानवता की सर्वोच्च उपलब्धियों में से एक हैं। ऐलोरा में विद्यमान मूर्तियों, पेंटिंग्स तथा उत्कीर्ण संदेशों में निहित कलात्मक एवं दार्शनिक संदेशों की अद्भुत समृद्धता को शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। 34 मठों एवं मंदिरों को समाहित करती ये संरचनाएँ भारत के अंतिम रॉक कट मंदिरों में से एक हैं। यहाँ तीन धर्मों के मंदिर विद्यमान हैं। 12 बौद्ध मंदिर एवं मठ, जिनको 630 से 700 ईसवी में बनाया गया। 17 हिंदू मंदिर, जिनको 550 से 780 ईसवी में बनाया गया और 5 जैन मंदिर, जिनको 800 से 1000 ईसवी में तैयार किया गया।

इनमें सबसे अद्भुत रचना है—कैलास मंदिर, जो लगभग 84 मीटर लंबी एवं 29 मीटर ऊँची संरचना है। इसे एक ही चट्टान को ऊपर से तराशकर बनाया गया है, जिसमें 100 वर्ष लगे और दो लाख टन चट्टानी पत्थर बारीकी से तराशते हुए हटाए गए। मंदिर को कैलास पर्वत के रूप में आकार देने की कोशिश की गई है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य गुफाएँ इंजीनियरिंग एवं वैश्विक महत्त्व की कलात्मक गुणवत्ता लिए हुए हैं, जिनमें कोपेंटर गुफा 10, दोताल गुफा 11, दशावतार गुफा 15, रामेश्वर गुफा 21 तथा अभूतपूर्व रूप में सुसज्जित इंद्रसभा गुफा 32 उल्लेखनीय एवं दर्शनीय हैं। महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में स्थित ये गुफाएँ दो वर्ग किमी के क्षेत्र में फैली हुई हैं। इन्हीं के समीप गायत्री परिवार का विशाल चेतना केंद्र भी है।

इसी तरह भारत में अन्य और भी गुफा मंदिर हैं, जो प्राचीन भारत की उन्नत स्थापत्य कला, सर्वधर्म समभाव एवं तकनीकी कौशल पर प्रकाश डालते हैं। निस्संदेह भारत के गुफा मंदिरों का संसार अद्भुत, रोचक एवं रोमांचकारी है, जिनका रॉक कट स्थापत्य विविधतापूर्ण एवं बहुत ही समृद्ध है। आश्चर्य नहीं कि ये विश्वभर की प्राचीन संस्कृतियों की सबसे आश्चर्यजनक उपलब्धियों में शुमार हैं, जो हर भारतवासी के लिए एक गर्व का विषय है। ❑

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा॥

—वामन पुराण

अर्थात—हे पांडुपुत्र युधिष्ठिर! संयमरूपी पुण्यतीर्थ वाली, सत्यरूपी जल वाली, शीलरूपी तटों वाली और दया की लहरों वाली आत्मारूपी जो नदी है—तुम उसमें स्नान किया करो। तीर्थों के पानी से अंतरात्मा शुद्ध नहीं होती।

छेड़ो संन्यासी छेड़ो वह शाश्वत सुमधुर तान

समाधि में साधक को किस प्रकार की अनुभूति होती है, वह किस प्रकार के आनंद की अनुभूति करता है? आत्मसाक्षात्कार अथवा ईश्वर का साक्षात्कार कर लेने के बाद साधक के चित्त की स्थिति कैसी होती है? उसका चिंतन, चरित्र और व्यवहार कैसा होता है? क्या हम भी समाधि की स्थिति, ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं, यदि हाँ तो कैसे? आदि प्रश्न व जिज्ञासाएँ अक्सर अध्यात्मपिपासु, अध्यात्मजिज्ञासु व अध्यात्मप्रेमी साधकों के मन में आती व उभरती हैं।

जिन साधकों ने उस स्थिति को प्राप्त ही नहीं किया, वे उस परम अनुभूति, परम अनुभव का बखान भला कैसे कर सकते हैं? गुड़ खाए बिना गुड़ की मधुरता की न तो अनुभूति संभव है न ही उसका बखान। अर्जुन एक सच्चे साधक हैं, शिष्य हैं, अध्यात्मप्रेमी हैं, अध्यात्मपिपासु हैं, अध्यात्मजिज्ञासु हैं। अत: अर्जुन के मन में भी कुछ ऐसे ही प्रश्न उठ रहे हैं। वे उन प्रश्नों के सही उत्तर सुनना चाहते हैं, इसलिए वे श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय के 54वें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण से पूछते हैं—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधी: किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥

अर्थात अर्जुन बोले—"हे केशव! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?" अर्जुन जैसे सच्चे साधक व शिष्य के सारगर्भित प्रश्न के उत्तर में भगवान श्रीकृष्ण गीता के द्वितीय अध्याय के 55-72 श्लोक में कहते हैं—

"हे अर्जुन! जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित संपूर्ण कामनाओं को भली भाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। दु:खों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता और सुखों की प्राप्ति में भी जो सर्वथा निस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है। जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस शुभ या अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है। कछुआ जैसे सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इंद्रियों के विषयों से इंद्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा समझना चाहिए।

"इंद्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती; पर स्थितप्रज्ञ पुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।

"हे अर्जुन! आसक्ति का नाश न होने के कारण ये प्रमथन स्वभाव, चंचल स्वभाव वाली इंद्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के मन को भी बलात् हर लेती हैं। इसलिए साधक को चाहिए कि वह उन संपूर्ण इंद्रियों को वश में करके समाहित चित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे; क्योंकि जिस पुरुष की इंद्रियाँ वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर हो पाती है।

"विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यंत मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है। और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है; परंतु अपने अधीन किए हुए अंत:करण वाला साधक अपने वश में की हुई, राग-द्वेष से रहित इंद्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अंत:करण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

"अंत:करण की प्रसन्नता होने पर इसके संपूर्ण दु:खों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त वाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में भली भाँति स्थिर हो जाती है। न जीते हुए मन और इंद्रियों वाले पुरुष में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती है और ऐसे मनुष्य के अंत:करण में भावना भी नहीं होती और भावनाहीन मनुष्य को शांति नहीं मिलती और शांतिरहित मनुष्य को सुख

कैसे मिल सकता है; क्योंकि जैसे जल में चलने वाली नाव को वायु हर लेती है, वैसे ही विषयों में विचरती हुई इंद्रियों में से मन जिस इंद्रिय के साथ रहता है, वह एक ही इंद्रिय इस अयुक्त पुरुष की बुद्धि को हर लेती है।

''इसलिए हे महाबाहो! जिस पुरुष की इंद्रियाँ इंद्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर है और संपूर्ण प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानंद की प्राप्ति में स्थितप्रज्ञ योगी जागता है और जिस नाशवान सांसारिक सुख की प्राप्ति में सब प्राणी जागते हैं, परमात्मा के तत्त्व को जानने वाले मुनि के लिए वही रात्रि के समान है। जैसे समस्त नदियों का जल सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसको (समुद्र को) बिना विचलित किए ही समा जाता है, वैसे ही सब प्रकार के भोग स्थितप्रज्ञ पुरुष में बिना उसे विचलित किए ही समा जाते हैं। वही स्थितप्रज्ञ पुरुष परम शांति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।

''अत: जो पुरुष संपूर्ण कामनाओं का त्याग कर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शांति को प्राप्त होता है अर्थात वह शांति को प्राप्त है। हे अर्जुन! यही ब्रह्म को, ईश्वर को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है। इस स्थिति को प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अपने जीवन के अंतकाल में भी इस ब्राह्मी स्थिति में स्थित होकर ब्रह्मानंद को प्राप्त हो जाता है।''

गीता के अतिरिक्त विभिन्न योगशास्त्रों में भी हमें स्थितप्रज्ञ, अर्थात आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी, जीवनमुक्त पुरुष के—साधक के लक्षण देखने को मिलते हैं। आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी, जीवनमुक्त, स्थितप्रज्ञ पुरुष के लक्षणों को रेखांकित करते हुए आचार्य शंकर विवेक चूड़ामणि में कहते हैं—

स्थितप्रज्ञो यतिरयं य: सदानन्दमश्नुते।
ब्रह्मण्येव विलीनात्मा निर्विकारो विनिष्क्रिय:॥ *427*॥
यस्य स्थिता भवेत्प्रज्ञा यस्यानन्दो निरन्तर:।
प्रपञ्चो विस्मृतप्राय: स जीवन्मुक्त इष्यते॥ *429*॥
अतीताननुसन्धानं भविष्यदविचारणम्।
औदासीन्यमपि प्राप्ते जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्॥ *433*॥
ब्रह्मानन्दरसास्वादासक्तचित्ततया यते:।
अन्तर्बहिरविज्ञानं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्॥ *436*॥
देहेन्द्रियादौ कर्तव्ये ममाहंभाववर्जित:।
औदासीन्येन यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्तलक्षण:॥ *437*॥
न प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयो:।
प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्त इष्यते॥ *440*॥
साधुभि: पूज्यमानेऽस्मिन्पीड्यमानेऽपि दुर्जनै:।
समभावो भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते॥ *441*॥

यत्र प्रविष्टा विषया: परेरिता
नदी प्रवाहा इव वारिराशौ।
लिनन्ति सन्मात्रतया न विक्रिया-
मुत्पादयन्त्येष यतिर्विमुक्त:॥ *442*॥

अर्थात जो पुरुष परब्रह्म में चित्त को लीन कर विकार और क्रिया का त्याग करके सदा आनंदस्वरूप ब्रह्म में मग्न रहता है, वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है। जिसकी प्रज्ञा स्थिर है, जो निरंतर आत्मानंद का अनुभव करता है और प्रपंच को भूला-सा रहता है, वह पुरुष जीवनमुक्त कहलाता है। जिसकी तृष्णा-वासना शांत हो गई है, जो कलावान होकर भी कलाहीन है अर्थात व्यवहार-दृष्टि में ऊपर से विकारवान प्रतीत होता हुआ भी, जो निरंतर अपने निर्विकारस्वरूप में ही स्थित रहता है—वह पुरुष जीवनमुक्त माना जाता है।

बीती हुई बात को याद न करना, भविष्य की चिंता न करना और वर्तमान में प्राप्त हुए सुख-दु:खादि में उदासीनता ये जीवनमुक्त के लक्षण हैं। ब्रह्मानंद के रसास्वादन में चित्त की आसक्ति रहने के कारण ब्रह्म और आंतरिक वस्तुओं का कोई ज्ञान न होना जीवनमुक्त पुरुष का लक्षण है। देह तथा इंद्रिय आदि में और कर्त्तव्य में जो ममता और अहंकार से रहित होकर उदासीनतापूर्वक रहता है, वह पुरुष जीवनमुक्त के लक्षण से युक्त है।

जो अपनी तत्त्वावगाहिनी बुद्धि से आत्मा और ब्रह्म तथा ब्रह्म और संसार में कोई भेद नहीं देखता, वह पुरुष जीवनमुक्त माना जाता है। साधु पुरुषों द्वारा इस शरीर के सत्कार किए जाने पर और दुष्ट जनों से पीड़ित होने पर भी जिसके चित्त का समानभाव रहता है, वह मनुष्य जीवनमुक्त माना जाता है। समुद्र में मिल जाने पर जैसे नदी का प्रवाह समुद्ररूप हो जाता है, वैसे ही दूसरों के द्वारा प्रस्तुत किए विषय आत्मस्वरूप प्रतीत होने से जिसके चित्त में किसी प्रकार का क्षोभ उत्पन्न नहीं करते, वह यतिश्रेष्ठ जीवनमुक्त है।

ऐसे ही स्थितप्रज्ञ ब्रह्मज्ञानी, आत्मज्ञानी, पुरुष के लक्षण एवं उनके सान्निध्य से मिलने वाले परमसुख की चर्चा करते हुए संत कबीर प्रस्तुत दोहों में कहते हैं—

आतम अनुभव जब भयो,
तब न हित हर्ष विषाद।
चित्र दीप सम है रहे,
तजिकर वाद-विवाद॥
दुख-सुख एक समान है,
हरष शोक नहिं व्याप।
उपकारी निहकामता,
उपजै छोह न ताप॥
मानापमान न चित्त धरै,
औरन को सनमान।
जो कोई आशा करे,
उपदेशै तेहि ज्ञान॥
कमल पत्र हैं साधु जन,
बसै जगत के माहिं।
बालक केरी धाय ज्यों,
अपना जानत नाहिं॥
जा सुख को मुनिवर रटैं,
सुर नर करैं विलाप।
सो सुख सहजै पाइया,
संतो संगति आप॥

अर्थात जब व्यक्ति को अपने चैतन्यस्वरूप का अनुभव हो जाता है, तब उसमें हर्ष-शोक नहीं रह जाते। ऐसे पुरुष वाद-विवाद त्यागकर चित्र के दीपक की भाँति स्थिर हो जाते हैं। ऐसे पुरुष सुख-दुःख को एक समान ही मानते हैं। उनके मन में हर्ष-शोक नहीं व्यापते। वे परोपकारी तथा निष्कामी होते हैं। उनके मन में ममता और संताप उत्पन्न नहीं होते।

संत जन दूसरे द्वारा प्राप्त हुए मान-अपमान पर ध्यान नहीं देते, दूसरे का आदर करते हैं। ऐसे लोग जगत समुद्र के बीच में रहकर भी जल में कमलपत्र की तरह जगत से निर्लिप्त रहते हैं। जैसे बच्चे को दूध पिलाने वाली दाई, बच्चे को अपना मानकर ममता नहीं करती, वैसे ही आत्मज्ञानी किसी में ममता नहीं करते अर्थात जगत में रहते हुए कर्त्तव्यपालन एवं प्रारब्धव्यवहार बरतते हुए भी वे कहीं फँसते नहीं। जिस मुक्ति के असीम सुख के लिए श्रेष्ठ मुनि जन रात-दिन नाना कल्पित नाम रटते एवं सुर, नर, मुनि रुदन करते हैं, वह सुख आप संतों की संगत में सरल रूप से पा जाएँगे।

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल में सौभाग्य से भारत की पुण्यधारा पर ऐसे स्थितप्रज्ञ, आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों के अवतरण की एक सतत प्रवाहमान परंपरा रही है; जो अपने प्रचंड तप के द्वारा योग के इस उच्चतम शिखर पर आसीन हुए और जिनके साहित्य, सत्संग व सान्निध्य से कोटिशः लोग अपने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सके, आत्मसाक्षात्कार, ईशसाक्षात्कार व ब्राह्मीस्थिति को प्राप्त कर सके।

ऐसी महान विभूतियाँ आज भौतिक शरीर में भले ही दृष्टिगोचर न हों; पर उनके आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान का अमृत उनके साहित्य, शास्त्र व शब्द शरीर के रूप में आज भी हमेशा उपलब्ध है। महर्षि पतंजलि, आचार्य शंकर, गुरु गोरखनाथ, महावतार बाबा, लाहिड़ी महाशय, युक्तेश्वरानंद गिरि, परमहंस योगानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, संत कबीर, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहंस, महर्षि अरविंद, महर्षि रमण, स्वामी शिवानंद एवं परमपूज्य गुरुदेव आदि उन्हीं महापुरुषों में से कुछेक हैं, जिनके शब्द शरीर, विचार शरीर, साहित्य आदि में अध्यात्म का अमृतकलश भरा पड़ा है, अध्यात्म का अमृतसागर लहरा रहा है। हम चाहें तो उसमें डुबकी लगाकर ब्रह्मानंद की अनुभूति इसी जीवन में कर सकते हैं और वस्तुतः ऐसा पावन-पुनीत जीवन जीने में ही मानव जीवन की सार्थकता है। अस्तु अब हम इस दिशा में कुछ कदम तो बढ़ाएँ। ऐसा ही आनंदमयी जीवन जीने की भाव-प्रेरणा स्वामी विवेकानंद रचित 'संन्यासी का गीत' शीर्षक कविता की प्रस्तुत पंक्तियों में लहरा रही है।

मत जोड़ो गृह-द्वार,
समा तुम सको, कहाँ आवास।
दूर्वादल हो तल्प तुम्हारा,
गृह-वितान आकाश।
खाद्य स्वतः जो प्राप्त,
पक्व वा इतर, न दो तुम ध्यान।
खान-पान से कलुषित होती
आत्मा वह न महान।
जो प्रबुद्ध हो तुम
प्रवाहिनी स्त्रोतपयस्विनी समान।
रहो मुक्त निर्द्वन्द्व
वीर संन्यासी छेड़ो तान।
ओम् तत्सत् ओम्॥ ❑

जीवनशैली में सुधार से तनाव-अवसाद का सहज उपचार

बढ़ता तनाव या अवसाद आज के जीवन का कड़वा सच है। बच्चे हों या बूढ़े, महिलाएँ हों या युवा, हर व्यक्ति इसकी गिरफ्त में है। इसके साथ ही तनाव के कारण उत्पन्न हो रहे मनोकायिक रोगों की भी बाढ़-सी आ रही है। अत्यधिक प्रतिस्पर्धी दौर से गुजर रहे इस युग में यह स्वाभाविक भी है, लेकिन इसके लिए हमारी बिगड़ी जीवनशैली भी कम जिम्मेदार नहीं है। खान-पान की बिगड़ी आदतें, अस्त-व्यस्त दिनचर्या, गलत संग-साथ, अमर्यादित आचरण-व्यवहार, नकारात्मक चिंतन—ये सब मिलकर व्यक्ति के तन-मन पर अपना घातक प्रभाव दिखा रहे हैं।

खान-पान की बिगड़ी आदतें मनःस्थिति को प्रभावित करती हैं; क्योंकि अन्न के अनुरूप मन का अपना सूक्ष्म विज्ञान है। अन्न के स्थूल हिस्से से हमारा शरीर बनता है, किंतु इसका सूक्ष्म अंश हमारे मन को गढ़ता है। ऐसे में तामसिक एवं राजसिक खान-पान तत्काल ही तन-मन की जड़ता एवं चंचलता का कारण बनते हैं तथा दीर्घ अंतराल में मन की अस्थिरता एवं विकृति को पुष्ट करते हैं।

अस्त-व्यस्त दिनचर्या जीवन को अशांत, असंतुलित एवं तनावग्रस्त करने के लिए काफी है, जिसके मूल में होता है—जीवन लक्ष्य की अस्पष्टता एवं जीवंतता का अभाव, जिससे अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह सही ढंग से नहीं हो पाता। सही ढंग से कर्त्तव्यपालन न हो पाना एक बड़ी त्रासदी है, जो मानसिक असंतोष एवं अशांति का कारण बनती है।

गलत संगत, व्यक्ति को जीवन के श्रेष्ठ पथ से विचलित करती है। यह मन की स्वभावगत दुर्बलता को हवा देती है, जो सहज रूप में इंद्रिय प्रलोभनों एवं सांसारिक सुख की ओर उन्मुख रहता है। गलत संग-साथ व्यक्ति की निम्नगामी वृत्तियों को ही भड़काता है और भोग विलास एवं सुख-लिप्सा में उलझाए रखता है।

आज के युग में स्मार्टफोन ने इस समस्या को और विकराल कर रखा है। इसके अधिकांश उपयोगकर्त्ता इसके नाना प्रकार के प्रलोभनों में इस कदर उलझे होते हैं कि वे जीवन की आवश्यक जिम्मेदारियों से भी विमुख हो रहे होते हैं। बच्चों से लेकर युवाओं एवं बड़ों में स्मार्टफोन का अत्यधिक प्रयोग एक लत का रूप ले चुका है, जो व्यक्ति की जीवनशैली को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है तथा उसके मानसिक संतुलन को डगमगा रहा है, जिसके उपचार के लिए डिजिटल डिटोक्सिकेशन केंद्र से लेकर मनःचिकित्सालय खोले जा रहे हैं।

अमर्यादित आचरण-व्यवहार भी मानसिक अशांति एवं संताप का कारण बनता है एवं साथ ही वांछित सम्मान एवं सामाजिक सहयोग से भी वंचित करता है। किसी की भावनाओं को आहत करना व इस भूल के परिमार्जन के बजाय इसको दोहराना, एक रुग्ण मनःस्थिति का निर्माण करता है। स्वार्थ एवं अहंकेंद्रित व्यवहार किसी भी रूप में व्यक्ति को सुख-चैन से नहीं बैठने देता, जो गहराई में व्यक्ति को तनावग्रस्त करता है।

नकारात्मक सोच व्यक्ति को एक ऐसे चक्रव्यूह में फँसा देती है, जहाँ व्यक्ति को अपने दोष-दुर्गुण व त्रुटियाँ नहीं दिखाई देते। जीवन की सभी बुराइयों, दुःखों व कष्टों का कारण वह बाहर की परिस्थितियों में तलाशता है या दूसरे व्यक्तियों पर थोपता रहता है। यह एक रुग्ण मानसिकता का निर्माण करती है, जिससे व्यक्ति का विकास कुंठित हो जाता है और वह घुटनभरे जीवन के लिए अभिशप्त होता है।

हमारी दैनिक जीवनशैली से जुड़ी इन नकारात्मक आदतों एवं ढर्रों का परिमार्जन कर हम जीवन के तनाव, अवसाद एवं अशांति के कई कारणों का सहज ही निराकरण कर सकते हैं। साथ ही इनसे उपजे मनोकायिक रोगों को पनपने से रोक भी सकते हैं। खान-पान में सुधार तन-मन को हलका, स्वस्थ एवं प्रफुल्लित रखने का आधार तैयार करता है। सुव्यवस्थित दिनचर्या—समय पर अपने कर्त्तव्य-कर्मों का निपटारा तथा कसी हुई दिनचर्या जहाँ सफल जीवन को सुनिश्चित करती है, वहीं जीवन में अपार संतोष का भी संचार करती है।

सही संग-साथ मानसिक ऊर्जा को संरक्षित रखता है, हमारी एकाग्रता को भंग नहीं होने देता तथा जीवन के प्रति

सकारात्मक भाव पैदा करता है। लक्ष्यकेंद्रित जीवनशैली जीवन के विकास के नित नए आयाम प्रस्तुत करती है। स्मार्टफोन से अत्यधिक चिपके रहने का अभिशाप इसके संयमित एवं सही उपयोग के साथ वरदान बन जाता है; क्योंकि इसमें ज्ञान-विज्ञान का अथाह भंडार भरा पड़ा है, जिसके सही उपयोग से आश्चर्यजनक उपलब्धियों को हस्तगत किया जा सकता है।

मर्यादित आचरण-व्यवहार व्यक्तित्व को गरिमामय बनाता है व लोगों में विश्वास पैदा करता है। उदार व्यवहार—गहरी भावनात्मक संतुष्टि प्रदान करता है तथा पारिवारिक सुख-शांति एवं सामाजिक उत्कर्ष की उर्वर पृष्ठभूमि तैयार करता है। सकारात्मक सोच व्यक्ति को उस चक्रव्यूह से बाहर निकालती है, जहाँ वह नकारात्मक सोच के कारण अपने अंदर घुट रहा होता है, काल्पनिक संशय, भय एवं आशंकाओं के मकड़जाल में उलझा, आक्रांत हो रहा होता है।

उपरोक्त आधार पर अपनाई गई दिनचर्या—आहार-विहार, चिंतन एवं आचरण-व्यवहार की स्वस्थ-संतुलित जीवनशैली स्व के प्रति सकारात्मक भाव पैदा करती है, जीवन के प्रति आशापूर्ण दृष्टिकोण का निर्माण करती है, जीवन की संभावनाओं की समझ विकसित करती है।

इसके बाद भी यदि सुधार नहीं होता है व जीवन अवसाद, संताप एवं विषाद से ग्रस्त है; तो मान सकते हैं, समस्या और गहरे स्तर पर है। इनके भी कारण गहरी आत्मसमीक्षा के आधार पर जटिल प्रारब्ध एवं कुसंस्कारों के रूप में अंदर खोजे व समझे जा सकते हैं और फिर इनका आध्यात्मिक उपचार किया जा सकता है।

स्वाध्याय-सत्संग इनको गहराई से समझने में मदद करते हैं। उचित मार्गदर्शन में किए गए जप-तप एवं अनुष्ठान इनकी जड़ों को क्षीण करने में मदद करते हैं और फिर प्रार्थना का सरल, सहज एवं आध्यात्मिक प्रयोग इनसे निपटने में प्रभावी भूमिका निभाता है। व्यक्ति अपने विवेक के आधार पर आवश्यकतानुसार अपनी जीवनशैली में इनका समावेश कर सकता है। ❑

मैकक्रिडल नामक एक पाश्चात्य विचारक ने मैगस्थनीज के इंदिक ग्रंथ का उदाहरण देते हुए अपनी पुस्तक में लिखा है कि जब सिकंदर भारत पर आक्रमण हेतु निकला, तब उसके गुरु अरस्तू ने उसे आदेश दिया था कि वह भारत से लौटते समय दो उपहार अवश्य लाए—एक गीता, दूसरा एक दार्शनिक संत; जो वहाँ की थाती हैं। सिकंदर जब वापस लौटने को था तो उसने अपने सेनापति को आदेश दिया—''भारत के किसी संत को ढूँढ़कर ससम्मान ले आओ।'' सैनिक दंडी स्वामी जिसका उल्लेख ग्रीक भाषा में 'डायोजिनीज' के रूप में हुआ है से मिला। दंडी स्वामी से सिकंदर के दूत ने मिलकर कहा—''आप हमारे साथ चलें, सिकंदर महान आपको मालोमाल कर देंगे। अपार वैभव आपके चरणों में होगा।'' अपनी सहज मुस्कान में दंडी स्वामी ने उत्तर दिया—''हमारे रहने के लिए शस्य-श्यामला भारत की पावन भूमि, पहनने के लिए वल्कल वस्त्र, पीने के लिए गंगा की अमृतधार तथा खाने के लिए एक पाव आटा पर्याप्त है। हमारे पास संसार की सबसे बड़ी संपत्ति आत्मधन है। इस धन की दृष्टि से तुम्हारा दरिद्र सिकंदर हमें क्या दे सकता है?'' शक्ति एवं संपत्ति के दर्प से चूर सिकंदर ने सैनिक के वार्त्तालाप को जब सुना तो विस्मित रह गया। अहंकार चकनाचूर हो गया। आध्यात्मिक संपदा के धनी इस देश के समक्ष नतमस्तक होकर चला गया।

साधनों से नहीं, साधना से मिलता है सच्चा सुख

यह सत्य है कि शाश्वत सुख साधन में नहीं, साधना में है; वासना में नहीं, उपासना में है; भोग में नहीं, योग में है। विषय-भोगों और भौतिक साधनों से यदि शाश्वत सुख की प्राप्ति हो सकी होती तो भौतिक सुख-साधनों से संपन्न लोग कभी दु:खी नहीं होते, हताश-निराश नहीं होते, अशांत नहीं होते और साधनविहीन अथवा न्यूनतम भौतिक साधनों में भी संत, फकीर, योगी, साधक आदि प्रफुल्लित और आनंदित नहीं होते। पर ऐसा है नहीं। जहाँ प्रचुर भौतिक सुख-सुविधाओं के होते हुए भी लोग अशांत और निराश रहते हैं, वहीं भौतिक साधनों के होने या न होने पर भी, भौतिक साधनों की प्रचुरता या अभाव में भी संत, फकीर, साधक आदि सदा मस्त, अलमस्त और आनंदित रहते हैं। आखिर उनकी इस अलमस्ती का कारण क्या है ?

ऐसा इसलिए है कि भौतिक साधनों से भौतिक सुख, ऐंद्रिय सुख तो प्राप्त किए जा सकते हैं, पर शाश्वत सुख और आत्मिक आनंद नहीं। आत्मिक आनंद तो आत्मा से ही निस्सृत हो सकता है। ब्रह्मानंद की प्राप्ति तो ब्रह्म से जुड़कर ही हो सकती है, उससे विलग और दूर रहकर नहीं। जैसे हिमालय से निकली या जुड़ी हुई नदियाँ व सरिताएँ सदा शीतल जल से भरी-पूरी रहती हैं, वैसे ही साधक की आत्मा जब योग, जप, तप आदि विभिन्न आध्यात्मिक साधनाओं के द्वारा ब्रह्म से जुड़कर, मिलकर एकाकार हो जाती है; तब सत्-चित्-आनंद स्वरूप ब्रह्म का आनंद साधक के अंतस् में, आत्मा में स्वयं ही उतर आता है।

ऐसी स्थिति में साधक के अंतस् में ही, साधक की आत्मा में ही ब्रह्म का अमृत आनंद, परम आनंद झरने और बहने लगता है। जिसमें डूब-डूबकर साधक सदा आनंदित और प्रफुल्लित होता रहता है। तब उसके आनंद की कोई सीमा नहीं होती; क्योंकि सीमा तो भौतिक सुख की हो सकती है, अलौकिक और आध्यात्मिक सुख की नहीं, शाश्वत सुख की नहीं। इसलिए भौतिक सुख, इंद्रियजन्य सुख, भोगजन्य सुख से व्यक्ति कभी तृप्त नहीं होता और आध्यात्मिक सुख, शाश्वत सुख, आत्मिक आनंद पाकर साधक कभी अतृप्त नहीं रहता।

ब्रह्म से निस्सृत ब्रह्मज्ञान का अमृत जल अंतस् में, आत्मा में प्रवाहित होते ही हम स्वर्गीय सुख, परम सुख, परम आनंद, ब्रह्मानंद के आगोश में हमेशा-हमेशा के लिए खो जाते हैं। अस्तु परब्रह्म परमेश्वर ही शाश्वत सुख के स्रोत हैं। शाश्वत सुख के स्रोत परब्रह्म परमेश्वर से जुड़ जाने के बाद हम हमेशा सुखी रहते हैं और उस स्रोत से दूर रहकर हम दु:खी और अशांत रहते हैं। इसलिए विविध योगशास्त्रों में ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, राजयोग, हठयोग, मंत्रयोग आदि किसी भी मार्ग का अवलंबन पाकर ईश्वर से, परब्रह्म परमेश्वर से, शाश्वत सुख के स्रोत से स्वयं को जोड़ने की, आत्मा के परमात्मा से मिलन की, एकाकार होने की बातें कही गई हैं। साथ ही यह भी कहा गया है कि आत्मज्ञानी व्यक्ति भौतिक एवं आध्यात्मिक, दोनों प्रकार के सुख प्राप्त करने में सफल होता है; क्योंकि भौतिक सुख-साधनों के होते हुए भी वह उनसे सर्वदा अनासक्त रहता है।

युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने ठीक ही कहा है—"आत्मज्ञान की आवश्यकता इसलिए है; क्योंकि उससे सांसारिक विषयों में स्वामित्व और नियंत्रण की शक्ति आती है। भौतिक सुखों की, रथ के उन घोड़ों से तुलना की जा सकती है, जिनमें यदि आत्मज्ञान की लगाम न लगी हो तो वे सवारसमेत रथ को किसी विनाश के गड्ढे में ही ले जा पटकेंगे। मनुष्य का वांछनीय आनंद वस्तुत: आध्यात्मिक आनंद ही है; जबकि लोग उसे भूलकर सांसारिक सुख को खोजने और पाने में लग जाते हैं। सांसारिक आनंद मृगतृष्णा के समान मिथ्या और अतृप्तिकर होता है; पर आध्यात्मिक आनंद अथवा आत्मिक आनंद सत्य और वास्तविक होता है। इसे पाने पर आनंद की इच्छा पूर्ण रूप से तृप्त होकर तिरोधान हो जाती है। अत: मनुष्य को सच्चे सुख और संपूर्ण तृप्ति के लिए आध्यात्मिक आनंद ही प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।"

इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह समय रहते सावधान हो जाए और जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में आज और अभी से ही चल पड़े। कौन जाने कल क्या होगा? और फिर कल को किसने देखा है? बाद में पश्चात्ताप के सिवाय कुछ भी हाथ लगने वाला नहीं है। इस संदर्भ में भर्तृहरिकृत वैराग्य शतकम् के प्रस्तुत श्लोकों में कितनी सुंदर प्रेरणा दी गई है—

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरादूरतो,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥ 86॥
तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं,
गुणोदारान्दारानुत परिचयामः सविनयम्।
पिबामः शास्त्रौघानुत विविध काव्यामृतरसा-
न्न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने॥ 39॥
दुराराध्यःस्वामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो,
वयं च स्थूलेच्छाः सुमहति फले बद्धमनसः।
जरा देहं मृत्युर्हरति दयितं जीवितमिदं,
सखे नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः॥ 52॥

अर्थात्—बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि जब तक शरीर स्वस्थ और नीरोग है, जब तक बुढ़ापा दूर है, जब तक इंद्रियाँ सबल तथा सक्षम हैं और जब तक जीवनीशक्ति का क्षय नहीं हुआ है, तभी वह आत्मकल्याण (मोक्षप्राप्ति) का यथासाध्य प्रयास कर ले; क्योंकि मकान में आग लग जाने पर कुआँ खोदने का कार्य आरंभ करने से क्या लाभ? मानव जीवन केवल कुछ क्षणों के लिए ही है। समझ में नहीं आता कि इस अल्प अवधि में हम क्या करें—गंगा जी के तट पर तपस्या करते हुए निवास करें अथवा गुणवती स्त्रियों की सविनय सेवा करें? या फिर धर्मशास्त्रों का अमृतपान करें अथवा विविध काव्यों का रसास्वादन करें?

घोड़ों के समान चंचल चित्त वाले इन राजाओं (इंद्रियों) को संतुष्ट करना संभव नहीं, पर दूसरी ओर हम लोग भी बड़ी आकांक्षाओं के साथ उनसे महान फल की आशा लगाए हुए हैं। इधर बुढ़ापा शरीर का और मृत्यु इस जीवन का ही नाश करने जा रहे हैं। अतएव हे सखे! इस जगत में विवेकवान व्यक्ति के लिए तपस्या के अतिरिक्त अन्य कुछ भी श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकता है।

वहीं संत कबीर, सांसारिक सुख की मृगतृष्णा व शरीर की नश्वरता की ओर इशारा करते हुए प्रस्तुत दोहों में हमें बड़ी ही उपयोगी भावप्रेरणा दे रहे हैं—

कबीर यह संसार है, जैसा सेमल फूल।
दिन दश के व्यवहार में, झूठे रंग न भूल॥
कबीर जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल।
चेत सकै तो चेत ले, मीच परी है ख्याल॥
कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा करु साधु की, कै गुरु के गुन गाव॥
कबीर रसरी पाँव में, कहँ सोवै सुख चैन।
साँस नगारा कूँच का, बाजत है दिन रैन॥
रात गँवाई सोय करि दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल यह, कौड़ी बदले जाय॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अंत का गीत॥
आछे दिन पाछे गए, गुरु सों किया न हेत।
अब पछितावा क्या करे, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।
आज कहै हरि काल्ह भजु, काल्ह कहै पुनि कालि।
आज काल के करत ही, अवसर जासी चालि॥
काल करै सो आज कर, सबहि साज तुव साथ।
काल-काल तू क्या करै, काल, काल के हाथ॥

अर्थात—संत कबीर कहते हैं कि इस संसार की सभी माया सेमल के फूल के सदृश केवल दिखाऊ है। अतः जीवन के दस दिन के व्यवहार एवं चहल-पहल में मत भूलो। आत्मकल्याण एवं आत्मिक आनंदरूपी सच्चा सुख प्राप्त करने हेतु साधना करने योग्य स्वतंत्रता का दिन जैसा आज है, वैसा कल भी रहेगा—यह भरोसा न करो। सावधान होना हो तो हो जाओ, मृत्यु सिर पर है, चेतो। हे मनुष्यो! इस शरीर का समय बीता जा रहा है।

संसार की मृगतृष्णा एवं विषय सुख की मृगमरीचिका में मत भटको और हो सके तो अब अपने कल्याण के लिए तत्पर हो जाओ। या तो संतों की सेवा करो या सद्गुरु के ज्ञान गुण का वर्णन सत्संग करो। हे जीवो! तुम्हारे पैरों में काल की रस्सी बँधी है, माया में सुख-चैन मानकर तुम कहाँ सो रहे हो, श्वास रूप कूच का नगाड़ा रात-दिन बज रहा है, सावधान हो जाओ। रात को सोने में और दिन को खाने में समाप्त कर दिया। अनमोल हीरा-सा मनुष्य जन्म मिला था, परंतु विषय-कौड़ी के बदले में जा

रहा है। या तो खाना या तो सोना, बस, और किसी बात पर ध्यान नहीं।

सद्गुरु के ज्ञानोपदेश जो आदि से अंत तक के मित्र हैं, उनको भूल गया। अच्छे दिन पीछे चले गए, बीत गए, परंतु यह अभागा मनुष्य इसने सद्गुरु से प्रेम नहीं किया। अब मरने के समय पछताने से क्या होता है, जब कामादि चिड़ियों ने नर-जन्मरूपी खेत को नष्ट कर दिया। आज कहता है कि मैं कल भजन करूँगा; कल आने पर पुनः कल के लिए कहता है।

इसी प्रकार आज-कल करते-करते आत्मकल्याण करने हेतु साधना करने योग्य बहुमूल्य समय यों ही चला जाता है। अतः जो शुभ कार्य कल करना है, उसे आज ही करो; क्योंकि कल्याण साधन की समस्त सामग्री तुम्हारे साथ में है। कल करूँगा-कल करूँगा, ऐसा तू क्या करता है; कल तो काल के हाथ में है। क्या पता कल क्या हो अर्थात जो करना है; आज ही करना होगा।

परम आनंद, ब्रह्मानंद की प्राप्ति हेतु आचार्य शंकर ने भी विवेक चूड़ामणि के प्रस्तुत श्लोक में क्या सुंदर प्रेरणा दी है—

लक्ष्ये ब्रह्मणि मानसं
दृढ़तरं संस्थाप्य बाह्येन्द्रियं
स्वस्थाने विनिवेश्य
निश्चलतनुश्चोपेक्ष्य देहस्थितिम्।
ब्रह्मात्मैक्यमुपेत्य तन्मयतया
चाखण्डवृत्त्यानिशं
ब्रह्मानन्दरसं पिबात्मनि
मुदा शून्यैः किमन्यैर्भ्रमैः॥ 379॥

अर्थात—चित्त को अपने लक्ष्य ब्रह्म में दृढ़तापूर्वक स्थिर कर बाह्य इंद्रियों को उनके विषयों से हटाकर उसे स्थिर करो, शरीर को निश्चल रखो और उसकी स्थिति की ओर ध्यान मत दो। इस प्रकार ब्रह्म और आत्मा की एकता करके तन्मयभाव से अखंड वृत्ति से अहर्निश मन-ही-मन आनंदपूर्वक ब्रह्मानंद रस का पान करो और थोथी बातों से क्या लेना है।

अतः समस्त संत, फकीर, ऋषि, मुनि, योगी व समस्त शास्त्रों का यही मत है कि साधनों से क्षणिक सुख की प्राप्ति अवश्य हो सकती है; पर शाश्वत सुख और सदा-सदा के लिए ब्रह्मानंद में स्थित होने के लिए तो एकमात्र ब्रह्म ही, परमेश्वर ही आधार हैं, ब्रह्म ही ब्रह्मानंद के एकमेव व आदि स्रोत हैं। अस्तु हम क्यों न समय रहते परम आनंद की प्राप्ति हेतु योगमार्ग, अध्यात्म मार्ग पर चल पड़ें; क्योंकि कल को किसने देखा है? आज हमारे हाथ में अवश्य है; पर कल तो काल के हाथ में है, जिस पर हमारा अधिकार नहीं। ❑

मनुष्य मशीन नहीं; उसे मात्र भौतिक साधनों के आधार पर ही सुसंचालित नहीं रखा जा सकता। उसमें चेतना भी है और उस चेतना को उत्कृष्ट चिंतन एवं परिष्कृत वातावरण का पोषण न मिलेगा तो निश्चय ही मानवीय उत्कृष्टता समाप्त होती चलेगी और उस समाज की जड़ें खोखली करेगी। राष्ट्र या समाज को सुस्थिर, सुदृढ़ और समुन्नत रखने के इच्छुकों को भौतिक उन्नति की ही रट नहीं लगाए रहना चाहिए, वरन यह भी देखना चाहिए कि वैयक्तिक उत्कृष्टता को पोषण देने वाले आधार विकसित हो रहे हैं या नहीं? यदि उस ओर उपेक्षा बरती जा रही है तो समझना चाहिए प्रगति थोथी, खोटी और उथली है। उस प्रवंचना से मिथ्या मन बहलाव ही किया जाता रहे तो राष्ट्रीय उत्कर्ष का ठोस आधार न बनेगा। मानवताप्रेमी विश्व नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे आत्मिक प्रगति की बात सोचें।

— परमपूज्य गुरुदेव

चेतना की शिखर यात्रा --210

शक्तिरूपेण संस्थिता

विगत अंक में आपने पढ़ा कि पूर्वोत्तर क्षेत्र के प्राचीन विशालाक्षी मंदिर में किसी अज्ञात साधु द्वारा संकेत रूप में अस्पष्ट ढंग से भगवती की उपासना कर रहे साधकों को आराधना का संदेश दिया गया। समय बीतने के साथ उस क्षेत्र में गायत्री परिजनों द्वारा प्रचार-प्रसार के क्रम में मातृशक्ति की आराधना के वास्तविक दर्शन पर साधकों के समक्ष प्रकाश डाला गया। सन् 1974 से शांतिकुंज में महिला शिक्षण शिविर के आरंभ के साथ महिला जागरण की गतिविधियों ने गति पकड़ी तथा पूज्यवर के आत्मीय परिजनों से स्वयं के परिवार की सहभागिता सुनिश्चित करने के आवाहन के फलस्वरूप बड़ी संख्या में महिला युग निर्माण शाखाओं की स्थापना के बाद इस संगठन को महिला जाग्रति अभियान का नाम दे दिया गया। वर्षों से उपेक्षित नारी जनसमुदाय की योग्यता के अभिवर्द्धन के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए प्रौढ़शालाओं की व्यवस्था व महिला कार्यकर्त्ताओं द्वारा जनसंपर्क के माध्यम से प्रत्येक को सहभागिता का अवसर प्रदान किए जाने का प्रयास भी किया गया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

महिला वर्ष और दशक

महिला जागरण शाखाओं के विस्तार और आंदोलन की गतिविधियाँ तीव्र से तीव्रतर होते जाने के साथ कुछ कार्यकर्त्ताओं को साल, छह महीने पुरानी घटनाएँ याद आ रही थीं। उन घटनाओं का सीधा संबंध गायत्री परिवार के महिला जागरण आंदोलन से नहीं था। फिर भी वे घटनाएँ और उनके संदर्भ महत्त्वपूर्ण हैं। संभवत: अगस्त, 1975 की बात है। शांतिकुंज परिसर में महिला जागरण शिविर चल रहा था। शिविर में भाग ले रहीं कुछ महिलाएँ रक्षाबंधन की चर्चा कर रही थीं। शिविर की चर्चा का ही हिस्सा रही इस गोष्ठी में मुंबई से आई कार्यकर्त्ता जानकी बजाज अपनी बात कह ही रही थीं कि राजस्थान की एक कार्यकर्त्ता राजलक्ष्मी ने कहा—''बहनो को यह तो पता चल ही गया होगा कि संयुक्त राष्ट्र ने हमारे अभियान से मिलते-जुलते कुछ और कार्यक्रम घोषित किए हैं।''

महिलाओं ने उनकी ओर उत्सुकता से देखा। जानकी ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहना जारी रखा—''सरकारी स्तर पर यह वर्ष महिला वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है, जगह-जगह कार्यक्रम हो रहे हैं, महिलाओं के लिए प्रौढ़शालाएँ शुरू की जा रही हैं, उन्हें अपने अधिकारों के बारे में बताया, समझाया जा रहा है।''

राजलक्ष्मी ने कहा—''सो तो है। संयुक्त राष्ट्र ने आठ मार्च को महिला दिवस घोषित किया है। हर वर्ष यह तारीख महिलाओं के अधिकार और उनकी स्थिति में सुधार के लिए याद की जाती रहेगी।''

चर्चा चल रही थी कि वृंदावन से आई सविता पांडे को हँसी आ गई। आस-पास बैठी दो, तीन महिलाएँ और हँस उठीं। उन्हें हँसी का कारण पता नहीं था; लेकिन प्रतिध्वनि की तरह और महिलाओं की खिलखिलाहट भी गूँज उठी। गोष्ठी का संचालन कर रही जानकी बजाज ने पूछा—''क्या हुआ बहन! हमें भी बताओ न। हो सकता है, हम लोग भी थोड़ा हँस लें।''

सविता पांडे ने पहले तो 'कोई बात नहीं', 'कुछ नहीं हुआ' कहकर टालने की कोशिश की। दूसरी कार्यकर्त्ता बहनों ने भी आग्रह किया तब बोली—''न जाने क्यों यह ध्यान आते ही हँसी आ गई कि गुरुदेव ने जिस अभियान को साल भर से छेड़ रखा है, उसके बारे में दुनिया के कर्त्ता-धर्ता बन रहे संगठनों को अब याद आ रही है। वे अब नकल कर रहे हैं।''

''नकल नहीं बहन! ये प्रेरणाएँ और हलचलें भी गुरुदेव द्वारा प्रवाहित की गई प्रेरणाओं का ही प्रताप हैं। फिर वे बताने लगीं कि पिछले साल जुलाई, 1974 में जब

वे यहाँ आई थीं तो महिला जागरण अभियान का ताना-बाना बुना जा रहा था। गुरुदेव ने देवकन्याओं की एक गोष्ठी में कहा था कि आने वाला समय महिलाओं का होगा। तुम लोगों की साधना सीप में पड़ने वाली ओस की बूँद की तरह सिद्ध होगी, जो मोती बनकर विश्व इतिहास रचेगी।''

पिछले वर्ष गुरुदेव के श्रीमुख से सुनी और बातों का जिक्र भी जानकी बजाज ने किया। उसमें विश्वस्तर पर महिलाओं में जागरूकता लाने के प्रयासों और वार्षिक पंचवर्षीय, दसवर्षीय और शताब्दि योजनाओं के संकेत भी। वे संकेत, जो गुरुदेव ने महिला जागरण अभियान के उद्घोष से पूर्व किए थे और शुरुआत के बाद तो उन्हें और विस्तार से स्पष्ट किया था। सविता पांडे, राजलक्ष्मी और अन्य कार्यकर्त्ता बहनें जब दुनिया के रंगमंच पर महिलाओं के लिए चिंता का जिक्र कर रही थीं, तब अधिकांश भारत में महिलाओं के उत्कर्ष को हलचलें व्याप उठी थीं।

''8 मार्च को ही महिला दिवस क्यों?'' गोष्ठी में एक बहन ने पूछा। जानकी ने कहा—''अब से करीब सत्तर साल पहले इसी दिन ब्रिटेन में महिलाओं ने 'रोटी और गुलाब' का नारा लगाते हुए जगह-जगह प्रदर्शन किए थे। रोटी उनकी आर्थिक सुरक्षा और गुलाब अच्छी जीवनशैली का प्रतीक था। बाद में यह आंदोलन आस्ट्रिया, डेनमार्क, जर्मनी और स्विटजरलैंड आदि देशों में भी फैला। दुनिया के दूसरे देशों में स्त्रियों पर जिस तरह की पाबंदियाँ रही हैं, उनकी हम भारतीय नारियाँ कल्पनाएँ भी नहीं कर सकतीं।''

''यहाँ भी तो बहुत बुरी हालत है।''—राजलक्ष्मी ने टोका; तो जानकी बताने लगी—''निश्चित ही भारत में भी अच्छी स्थिति नहीं है, लेकिन इसके बावजूद महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा प्राप्त है। परिवार में, संयुक्त परिवार में, ससुराल और मायके में महिलाओं का जैसा ध्यान रखा जाता है, उसकी कल्पना भी पश्चिम की बहनें नहीं कर सकतीं।''

शांतिकुंज की एक गोष्ठी में हुई यह चर्चा तो एक प्रतीक है। असल में पूरे देश में जहाँ-जहाँ भी महिला जागरण का प्रकाश पहुँचा था, यह तथ्य अनुभव किया जा रहा था कि बाहरी समाज में इन दिनों जो घट रहा है, उसकी स्फुरणा गायत्री परिवार के सामूहिक जप से ही आई है। राष्ट्रसंघ ने 1952 में भारी बहुमत से महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों का नियम पास किया था; लेकिन भारत में यह अधिकार शुरू से ही प्राप्त था। 1975 में अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष का भारत में उद्घाटन करते हुए, 16 फरवरी को तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने भी कहा था कि अपना देश नारी शक्ति को मान्यता देने के क्षेत्र में दुनिया के सभी देशों में आगे है। ऐसा कोई काम नहीं है, जिसे महिलाएँ पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर न कर सकें। इस क्षेत्र में कुछ धार्मिक और सामाजिक संगठनों की भूमिका उल्लेखनीय है। (क्रमशः)

प्राकृतिक सौंदर्य संपदा एवं आत्मिक विचार संपदा का धनी भारत ही वह देश है, जिसके ज्ञानसागर में डुबकी लगाकर जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक शेपेनहावर को कहना पड़ा कि विश्व के संपूर्ण साहित्यिक भंडार में किसी ग्रंथ का अध्ययन मानव विकास के लिए इतना उपयोगी एवं ऊँचा उठाने वाला नहीं है, जितना कि उपनिषदों की विचारधारा का अवगाहन। इस सागर में डुबकी लगाने से मुझे शांति मिली है तथा मृत्यु के समय में भी शांति मिलेगी। इसी तरह विश्व के अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों ने जिनमें रोम्यारोलां से लेकर टॉल्स्टॉय सम्मिलित हैं; जिन्होंने भारतीय ज्ञानपरंपरा से न केवल अपने जीवन हेतु मार्गदर्शन प्राप्त किया, बल्कि अनेकों को उस पथ पर चलने के लिए प्रोत्साहित भी किया।

सम्मिलित प्रयासों से ही बुझेगी यह प्यास

सरकार ने भारत में जलसंकट की गंभीरता को देखते हुए जलशक्ति मंत्रालय का गठन कर दिया है। जो सभी जल संबंधी मुद्दों की व्यापक रूप से निगरानी करेगा। मौजूदा जल संसाधन मंत्रालय को पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय के साथ विलय करके और नदी संरक्षण निदेशालय को नए मंत्रालय में स्थानांतरित करके मजबूत किया गया है। देश में बढ़ते जलसंकट को ध्यान में रखते हुए केंद्र सरकार ने जलसंरक्षण और वर्षा जल संचयन, पारंपरिक जल निकायों और टैंकों का नवीनीकरण, बोरवेल रिचार्ज संरचनाओं का पुनः उपयोग, वाटरशेड विकास और गहन वनीकरण पर जोर देते हुए जलशक्ति-अभियान शुरू किया है।

यह अभियान 255 जिलों में फैले 1593 ब्लॉकों में लागू किया जाएगा, जिनमें से अधिकांश तमिलनाडु, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, तेलंगाना, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में स्थित हैं। सभी गाँवों को मिल करके जलसंकट को दूर करने के लिए सामूहिक प्रयास करने की आवश्यकता है। हम पानी की कमी के बारे में जागरूकता पैदा करें, ज्ञान साझा करें, जलभंडारण के पारंपरिक तरीकों और जलसंरक्षण पर काम करने वाले व्यक्तियों और गैरसरकारी संगठनों के बारे में जानकारी साझा करें। समयबद्ध तरीके से सफल क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक जिले के लिए केंद्र सरकार के 255 वरिष्ठ अधिकारियों को केंद्रीय प्रभारी नियुक्त किया जाएगा। यह सही दिशा में सराहनीय कदम है।

नल से जल सरकार की एक नई पहल है, जो सन् 2024 तक सभी शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों से मौजूदा जल संकट को दूर करने और सभी घरों में पाइप से पानी प्रदान करने का वादा करती है। यदि इसे सफलतापूर्वक लागू किया जाता है तो यह क्रांतिकारी कदम होगा। सभी के लिए पाइप जलापूर्ति का प्रावधान करने के लिए नए कौशल, उच्च निवेश, उत्तरदायी दक्षता की आवश्यकता होगी। इसके लिए हमें ये कदम उठाने चाहिए।

इस योजना के अनुसार, अधिकांश सुरक्षित पाइप पेयजल योजनाएँ भू-जल आपूर्ति पर आधारित होंगी। इसलिए सभी पारंपरिक और आधुनिक भू-जल पुनर्भरण तरीकों को अपनाकर स्थानीय भू-जल संसाधनों के संवर्द्धन के प्रयास किए जाने चाहिए। भारत के प्रत्येक राज्य और क्षेत्र के पास अपने समय की जाँच की गई प्रौद्योगिकी और प्रथाएँ हैं, जो स्थानीय जल को सुरक्षा प्रदान करती हैं। सफल उदाहरणों में राजस्थान में जोहड़, तालाब; टनका, खड़ीन; दिल्ली में बावली, हौज और तालाब; बुंदेलखंड में चंदेला टेंक; केरल में सर्ग, मंदिर और दक्षिणी भारत में सामुदायिक टेंक; पंजाब में टोबा; बिहार में अहार, पाइनेस और ताल एवं अपाटनी तथा उत्तर पूर्व में बाँस से टपकना शामिल हैं।

तालाबों में पुनर्भरण कुओं की स्थापना करके स्थानीय जल-आपूर्ति को बढ़ाने के लिए इनका प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है। इस तरह के प्रयास से गाँव को अत्यधिक बाढ़ से भी बचाया जा सकेगा। उत्तर और दक्षिण दोनों से कई अच्छे उदाहरण हैं, यहाँ कैस्केडिंग चेक डैम, सोख-गड्ढों, खाइयों, गहन वृक्षों और घास-रोपण के निर्माण के माध्यम से समुदाय के ठोस प्रयासों ने सूखी नदियों और नदियों को पुनर्जीवित करने में मदद की है। इस तरह के प्रयासों को गुजरात और कर्नाटक में बढ़ाया गया है। वेटलैंड्स, झीलों, जल निकायों जो शहर के लिए स्पंज के रूप में कार्य करते हैं, उन्हें कभी भी उद्योगों और शहरीकरण के लिए नष्ट नहीं किया जाना चाहिए; क्योंकि वे बाढ़ को अवशोषित करने और भू-जल को रिचार्ज करने में संतुलन रखते हैं। डेवलपर्स का ऐसा लालच चेन्नई में हाल के जलसंकट का एक मुख्य कारण था।

महीने भर पहले जिस गाँव में सूखे जैसे हालात थे, वहाँ ग्रामीणों ने अपना पसीना बहाकर भू-जल स्तर बढ़ा दिया। रात-दिन जुटे ग्रामीणों ने न केवल 20 दिन में स्टॉप डैम (छोटा बाँध) बना दिया, बल्कि नदी भी गहरी कर दी। अब नदी के एक किलोमीटर हिस्से में चार से पाँच फीट पानी भरा हुआ है। इससे आस-पास के भू-जल स्तर में भी इजाफा हो रहा है। स्थिति यह है कि जहाँ पूरे गाँव में सिर्फ एक नलकूप पानी दे रहा था, वहाँ अब डेढ़ सौ से ज्यादा बोरिंग रिचार्ज हो गई हैं। यह कहानी है एक गाँव की। पिछले महीने गाँववालों ने

पानी के मोल को गहराई से समझा। गाँव में सिर्फ एक नलकूप ही पानी दे रहा था, बाकी सूख गए थे। आठ हजार की आबादी वाले गाँव के बाशिंदे पानी के लिए इतने तरसे कि कुछ कर गुजरने की ठान ली।

जलसंकट की चिंता में डूबे गाँव के युवा एक स्थानीय धर्मशाला में बैठे और गाँव की कंकावती नदी का पानी रोकने की योजना बनाई। बैठक में किसी ने कहा कि सरकारी विभाग के भरोसे बैठे रहे तो फाइल तैयार होने, पैसा मंजूरी में ही एक-दो साल लग जाएँगे। तब तक कौन जलसंकट झेलेगा? क्यों न हम खुद ही पैसा लगाएँ और बाँध बनाएँ। सभी इसके लिए राजी हो गए और पहली बैठक में ही 50 हजार रुपये इकट्ठे हो गए। शाम होते-होते ठेकेदार तय हो गया और अगले दिन से काम शुरू भी हो गया। खरच की बात आई तो घर-घर से पैसा मिलने लगा। गाँव के एक परिवार ने एक लाख रुपये दिए तो किसी ने पाँच हजार। पूरे गाँव से 20 लाख रुपये का चंदा हो गया। नदी को गहरा करने के लिए एक पोकलेन मशीन किराये पर ली गई। दूसरी पोकलेन की व्यवस्था नगर निगम ने कर दी। खुदाई में जो मिट्टी निकली, उससे गाँव की एक खाली जमीन पर भराव कर दिया। वहाँ अब बगीचा बनाया जाएगा।

बाँध बनाने और नदी को गहरा करने का काम 20 दिन में पूरा हो गया, ताकि बारिश आने के पहले ही पानी रोका जा सके। ठेकेदार से रात में भी काम करवाया गया। ग्रामीण खुद भी जुटे और मानसून के आगमन से पहले काम पूरा कर लिया। स्टॉप डैम वाले हिस्से में गाद हटाने के लिए एक वॉल्व भी लगाया गया। दो-तीन बार हुई बारिश के बाद नदी में रुका पानी ग्रामीणों की मुस्कान का कारण बन गया है। मानसून के जाते-जाते नदी का जलस्तर और बढ़ जाएगा और सालभर नलकूप व बोरिंग रिचार्ज होने में मदद मिलेगी। ग्रामीणों ने बताया कि नदी के दोनों तरफ पाल मजबूत करने के लिए पौधारोपण किया जाएगा। इसके लिए एक साथ पौधे रोपे गए। एक परिवार को पाँच-पाँच पौधे गोद दिए गए हैं; ताकि उनकी निगरानी हो सके। ग्रामीणों ने तय किया है कि सरकारी मदद के बगैर अब गाँव में विकास के दूसरे कामों को भी हाथ में लेंगे। जहाँ निजी बोरिंग हैं, वहाँ वाटर रिचार्जिंग का अभियान भी चलाएँगे। ऐसा संकल्प हर गाँव व शहर में उभरने की जरूरत है। ❑

लूथर ने 21 वर्ष की आयु में धार्मिक सुधारों के लिए क्रांतिकारी हलचल पैदा कर दी थी। नैपोलियन ने 25 वर्ष की आयु में इटली पर विजय प्राप्त की थी। न्यूटन ने 21 वर्ष का होने से पूर्व ही अपने महत्त्वपूर्ण आविष्कार कर डाले थे। चेस्टरटन ने जब काव्य-क्षेत्र में प्रवेश करके अपनी प्रतिभा से सबको आश्चर्य में डाला था, तब वह 21 वर्ष का था। विक्टर ह्यूगो जब 15 वर्ष के थे ,तब उन्होंने कई नाटक लिखे थे और तीन पुरस्कार जीते थे। सिकंदर जब दिग्विजय को निकला तब कुल 22 वर्ष का था। फ्रांस की क्रांति का नेतृत्व करने वाली जॉन 17 वर्ष की थीं। स्वामी विवेकानंद व शंकराचार्य को अल्पायु में ही उपलब्धियाँ मिली थीं।

वास्तव में यदि उत्कृष्ट इच्छा और अदम्य भावना जाग्रत हो जाए तो किशोर आयु में भी मनुष्य अपनी शक्तियों के सुनियोजन द्वारा ऐसा कुछ कर सकता है, जिससे उसका जीवन भी धन्य हो एवं वह अनेकों को पार लगा सके।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 131

कुलाधिपति जी के साहित्य में आध्यात्मिक चेतना

साहित्य का मूल उद्देश्य जीवन और समाज को सही दिशा एवं प्रेरणा देना है, परंतु वर्तमान समय में प्रचुर मात्रा में लिखा जाने वाला साहित्य दिशाहीन और निरर्थक साबित हो रहा है। भारतीय साहित्य की मूल भावना उसमें से गायब है। सनातन मूल्यों से प्रेरित साहित्य हमारे समाज एवं संस्कृति की जीवनधारा में चैतन्य शक्ति बनकर प्रवाहशील रहा है। हमारा साहित्यिक संसार व्यक्ति, समाज, संस्कृति, धर्म आदि बहुआयामी पहलुओं से समृद्ध है और इसकी मूल भावना आध्यात्मिक और आत्मिक अनुभूतियों पर टिकी है। इसी मूल भावना को बनाए रखना आधुनिक साहित्य जगत के लिए चुनौती है।

समकालीन युग में कुछ आध्यात्मिक साहित्य अवश्य लिखा गया है, लेकिन वह जनसाधारण के लिए व्यावहारिक धरातल पर अधिक विस्तार प्राप्त नहीं कर पाया है। आधुनिक युग में महर्षि दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, श्रीअरविंद, परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी आदि महापुरुषों के साहित्य की अपनी मौलिकता एवं विशेषता है। डॉ० प्रणव पण्ड्या के साहित्य की इन्हीं तरह की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्राच्य अध्ययन विभाग (हिंदी विषय) में एक विशेष एवं महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है।

यह शोधकार्य सन् 2017 में शोधार्थी गौतम वंदना सिंह द्वारा प्रो० जितेंद्र तिवारी जी के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस अध्ययन का विषय है—**'डॉ० प्रणव पण्ड्या के साहित्य में आध्यात्मिक चेतना—एक समीक्षात्मक अध्ययन।'** इस सैद्धांतिक, विवेचनात्मक एवं समीक्षात्मक विधि पर आधृत शोध अध्ययन को कुल सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय है—विषय प्रवेश। इसके अंतर्गत शोध विषय परिचय, अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व, शोधकार्य का औचित्य एवं उद्देश्य एवं डॉ० प्रणव पण्ड्या द्वारा लिखित साहित्य की विवेचना की गई है। डॉ० प्रणव पण्ड्या एक समन्वयकारी एवं उच्चस्तरीय व्यक्तित्व के धनी हैं। वे एक साथ उच्चकोटि के वैज्ञानिक और अध्यात्मवेत्ता हैं। ऐसे प्रखर व्यक्तित्व हैं, जिनकी रग-रग में अध्यात्म समाया हुआ है।

उन्होंने एम० डी० डॉक्टर होते हुए भी न सिर्फ अपने व्यक्तित्व को आध्यात्मिकता के शिखर पर स्थापित किया, वरन बड़ी ही सरलता-आत्मीयता से हर वर्ग के व्यक्ति के मन-मस्तिष्क एवं हृदय में आध्यात्मिक चेतना का चिंतन भी पहुँचाया है। अपने क्रांतिकारी प्रखर विचारों द्वारा बुद्धिजीवियों के मन-मस्तिष्क को झकझोरा है। उनका हृदय बालसुलभ सरलता, उदारता एवं आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत है और उनकी मानस चेतना युगमनीषी का प्रतिनिधित्व करती है। वे अध्यात्म-क्षेत्र के उत्कृष्ट साधक, चिंतक, मनीषी एवं प्रखर वक्ता हैं। युवाशक्ति के लिए डॉ० प्रणव पण्ड्या आध्यात्मिक विज्ञान के कुशल मार्गदर्शक एवं मनोचिकित्सक भी हैं।

द्वितीय अध्याय है—अध्यात्म दर्शन। इस अध्याय के अंतर्गत वैदिक चिंतन में, उपनिषदों एवं षड्दर्शन व गीता में परम तत्त्व की अवधारणा को विवेचित किया गया है, साथ ही समकालीन भारतीय चिंतन पर भी प्रकाश डाला गया है। ईश्वर, जीव और जगत की विस्तृत व्याख्या करते हुए इस संदर्भ में डॉ० प्रणव पण्ड्या के विचारों की समीक्षात्मक विवेचना इस अध्याय को विशिष्ट बनाती है।

तृतीय अध्याय है—डॉ० प्रणव पण्ड्या का वैज्ञानिक अध्यात्मवाद। इस अध्याय के प्रथम पक्ष में विज्ञान एवं वैज्ञानिक प्रणालियों तथा अध्यात्म एवं आध्यात्मिक प्रणालियों की विस्तृत विवेचना की गई है। अध्याय के द्वितीय पक्ष में वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की आवश्यकता, महत्त्व एवं स्वरूप की विस्तृत विवेचना है। डॉ० प्रणव पण्ड्या के अनुसार आधुनिक समाज में विज्ञान को धार्मिक दृष्टि एवं धर्म को वैज्ञानिक दृष्टि की नितांत आवश्यकता है। इसी आधार पर वे वैज्ञानिक अध्यात्मवाद का प्रतिपादन करते हैं। उनका यह सिद्धांत उनके साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

डॉ० प्रणव पण्ड्या के इस नूतन सिद्धांत में यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है कि मानवीय जीवन चेतना और पदार्थ का सम्मिलन है। उसके भविष्य की सफलता के लिए भी इन दोनों का साथ चाहिए। जीवन के संसाधन तो चाहिए ही, लेकिन साथ में इनका उपयोग कर सकने लायक विकसित एवं परिष्कृत चेतना भी चाहिए। यदि मनुष्य को उसके अपने भविष्य की सफलता की निरंतरता बनाए रखनी है तो उसे विज्ञान व अध्यात्म में समन्वय स्थापित करना ही पड़ेगा। डॉ० प्रणव पण्ड्या द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक अध्यात्मवाद सामंजस्य एवं समग्रता की पद्धति है। इसमें भौतिकता का आध्यात्मिकता के साथ, व्यक्ति का समाज के साथ और तर्क का श्रद्धा के साथ अपूर्व मिलन देखने को मिलता है।

चतुर्थ अध्याय है—अध्यात्म चिकित्सा। इसके अंतर्गत अध्यात्म चिकित्सा, अध्यात्म चिकित्सक के गुण, जीवन रोगों के आध्यात्मिक निदान की विधि आदि की विस्तृत विवेचना की गई है। डॉ० प्रणव पण्ड्या के साहित्य में मानव जीवन की आध्यात्मिक संरचना की स्पष्टतया व्याख्या मौजूद है। इस व्याख्या में अध्यात्म चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण एवं नवीन पहलू उभरकर सामने आता है। जीवन में देह के अतिरिक्त इंद्रिय, प्राण, मन, चित्त, बुद्धि, अहं एवं अंतरात्मा की अन्य अदृश्य कड़ियाँ भी हैं। रोगों के निदान के लिए इनका पारदर्शी ज्ञान भी आवश्यक है। अध्यात्म चिकित्सा का मर्मज्ञ उक्त सभी अदृश्य कड़ियों के आधार पर चिकित्सा करता है। उसकी निदान विधि में व्यवहार, चिंतन, संस्कार, प्रारब्ध, पूर्वजन्म के दोष-दुष्कर्म सभी सम्मिलित हैं। रोगों के अनुसार ही अध्यात्म चिकित्सा की अलग-अलग विधियाँ हैं। जैसे—मंत्रविद्या, तपस्या, ध्यान, प्रार्थना, ज्योतिर्विज्ञान, तंत्रविद्या, स्वाध्याय, योग आदि। अध्ययन में इनकी विस्तृत विवेचना की गई है।

पंचम अध्याय है—आध्यात्मिक मार्गदर्शक। इस अध्याय के अंतर्गत आध्यात्मिक मार्गदर्शक की आवश्यकता, मार्गदर्शक का व्यक्तित्व एवं मार्गदर्शन के स्वरूप की विस्तृत विवेचना की गई हैं। डॉ० प्रणव पण्ड्या एक समर्थ आध्यात्मिक मार्गदर्शक हैं। वे कई रूपों में लोगों का आध्यात्मिक मार्गदर्शन करते हैं, जैसे—(1) अखण्ड ज्योति मासिक पत्रिका व अन्य पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा। (2) शांतिकुंज में संचालित शिविरों के द्वारा, (3) देश-विदेश में विभिन्न स्तरों के हजारों कार्यक्रमों में भागीदारी करके, (4) देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के रूप में विश्वविद्यालय में ध्यान, गीता व वर्ष में दो बार नवरात्रों में रामायण व गीता पर आधृत कक्षाओं के माध्यम से, (5) अन्य संस्थानों, सभाओं में विशिष्ट अतिथि के रूप में जाकर आध्यात्मिक संदेश करके, (6) ईमेल, मोबाइल फोन द्वारा जिज्ञासुओं, परिजनों की समस्या समाधान करके, (7) वेबसाइट द्वारा नियमित संदेश एवं मार्गदर्शन द्वारा, (8) शांतिकुंज, विश्वविद्यालय के कार्यकर्त्ता एवं देश-विदेश से शांतिकुंज पधारने वाले लाखों गायत्री परिजनों का प्रतिदिन प्रातः मार्गदर्शन एवं जटिल समस्याओं का समाधान करके। ये सभी आयाम डॉ० प्रणव पण्ड्या के साहित्यिक चिंतन से गहरा संबंध रखते हैं।

षष्ठ अध्याय—डॉ० प्रणव पण्ड्या के साहित्य में आध्यात्मिक चेतना का इक्कीसवीं सदी में महत्त्व। इस अध्याय के अंतर्गत बीसवीं सदी के परिदृश्य को सामने रखते हुए इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य की अवधारणा का समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही डॉ० प्रणव पण्ड्या के साहित्य में इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य को साकार बनाने वाली आध्यात्मिक परिकल्पनाओं को प्रस्तुत किया गया है। समकालीन महापुरुषों के साहित्य का अवगाहन करने एवं इस संदर्भ में डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के आध्यात्मिक साहित्य की समीक्षा करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनका आध्यात्मिक साहित्य वर्तमान एवं भविष्य की पीढ़ी के लिए अत्यंत उपादेयी है एवं समर्थ मार्गदर्शन करते हुए आध्यात्मिक चेतना का अग्रणी प्रसारक बनेगा।

अंतिम अध्याय है—उपसंहार। इस अध्याय में सभी अध्यायों का सार संक्षेप प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष रूप में अध्ययन का महत्त्व, उपादेयता एवं वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता को प्रस्तुत किया गया है। डॉ० प्रणव पण्ड्या जी एक आध्यात्मिक विभूति हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी, उच्च कोटि के मनीषी, वैज्ञानिक और गुरु स्तर के अध्यात्मवेत्ता हैं। उनका समूचा साहित्य आध्यात्मिक भावना से युक्त है। शोधार्थी की मान्यतानुसार यह साहित्य हिंदी साहित्य जगत को नई दिशा व उच्चस्तरीय मार्गदर्शन देने में समर्थ है साथ ही समाज को सही दिशा व प्रेरणा देने की क्षमता से भी युक्त है। ❑

असफल प्रयास भी साधना के आवश्यक सोपान हैं

शीलधर्म नामक अध्यात्मपिपासु युवक साधना में संलग्न था। साधना में प्राथमिक सफलता के बाद अब उसका पथ कठिन होता जा रहा था। मन कई बार साधना से उचट-सा जाता था। कई बार वांछित सफलता न मिलने पर उसके मन पर उदासी, हताशा एवं निराशा का कुहासा घनीभूत हो उठता। मन का संताप शांत करने के लिए शीलधर्म ने सघन वन प्रांत में शिखर के समीप रह रहे बाबा प्राज्ञचक्षु से मिलने की ठानी, जिनके बारे में प्रख्यात था कि वे सच्चे जिज्ञासु को कभी निराश नहीं करते हैं।

यात्रा के क्रम में शहर से सटे जंगल में प्रवेश करते ही वन की हरियाली एवं शीतलता शीलधर्म को शांति का एहसास करा रही थीं, लेकिन घने जंगल के बीच जंगली पशुओं का सामना होने की संभावना शीलधर्म के मन के किसी कोने में भय का संचार भी कर रही थी। साथ ही वन की नीरव शांति के बीच पक्षियों का कलरव गान उसे आनंदित कर रहा था। शिखर पर स्थित बाबा के ठिकाने की ओर बढ़ती चढ़ाई के साथ शीलधर्म की साँस फूल रही थी। जहाँ दम टूटने लगता, वहाँ शीलधर्म कुछ पल विश्राम करता, जंगली स्रोतों से बह रहे निर्मल जल को पीकर प्यास बुझाता व आगे बढ़ता। इस तरह कई घंटे की यात्रा के बाद शीलधर्म बाबा की गुफा के द्वार पर पहुँचा।

गहरी जिज्ञासा व परेशानी होने पर शीलधर्म बाबा जी के यहाँ पधारता रहता था, सो बाबा जी उसके आते ही समझ जाते थे कि बच्चा संतप्त है, कोई समाधान चाहता है। शीलधर्म ने गुफा में पहुँचते ही बाबा जी को साष्टांग प्रणाम किया व साथ लाए फल-फूल भेंट किए। बाबा जी ने शीलधर्म से कुशलक्षेम पूछकर उसे गुफा की बगल में बनी दूसरी छोटी गुफा में विश्राम के लिए कहा। शाम में कंद-मूल व फल का आहार लेकर शीलधर्म रात को निर्देशित गुफा में विश्राम करने लगा। अगले दिन प्रातः शीलधर्म को साथ लेकर बाबा जी जंगल की सघनता में समाधान के लिए निकल पड़े।

रास्ते में मखमली घास से पानी टपक रहा था, जो सीधे नीचे के भारी पत्थरों पर गिर रहा था। इसके गिरने के स्थान पर एक गहरा गड्ढा हो चुका था, जिसे देखकर शीलधर्म को आश्चर्य हुआ। बाबा शीलधर्म को आश्चर्य करते देख कहने लगे—"वत्स! पानी की एक बूँद में कोई शक्ति नहीं, जिसका स्पर्श स्वयं में कितना कोमल होता है, लेकिन बार-बार गिरने पर, गिरने के स्थान पर यह कोमलता भी अपना प्रभाव छोड़ती है, जो धीरे-धीरे एक गड्ढे का रूप ले लेती है। यह छोटे, परंतु अनवरत प्रयासों की अमोघ शक्ति का परिचायक है।"

बाबा अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहने लगे—"वत्स शीलधर्म! ठीक इसी तरह साधक का छोटा-सा भी प्रयास अपना प्रभाव छोड़ता है, किंतु उसकी निरंतरता महत्त्वपूर्ण है। नियमित रूप में स्वाध्याय-सत्संग, जप-तप, ध्यान-प्रार्थना, आत्मचिंतन-मनन व आत्मसुधार-निर्माण के स्वल्प से भी प्रयास दीर्घकाल में चित्तवृत्तियों के झंझावात का निरोध करने में अपनी निर्णायक भूमिका निभाते हैं। प्रश्न बस, नियमितता का है।"

जंगल के दूसरे छोर पर कुछ लोग चट्टान को फोड़ रहे थे। इनकी मेहनत को देखकर भी शीलधर्म चकित था कि वे किस तरह एक-एक कर लोहे के भारी हथौड़े से चट्टान पर प्रहार किए जा रहे हैं, लेकिन चट्टान पर इसका कोई खास प्रभाव होता दिख नहीं रहा। इसे देखकर शीलधर्म ने बाबा से पूछा—"बाबा! यह कैसा दुष्कर कार्य है, जिसे ये लोग अंजाम दे रहे हैं।" बाबा कहने लगे—"इनके इस कार्य में जीवन का एक बड़ा दर्शन छिपा है, जिसको समझने की आवश्यकता है। इनका हर प्रहार, हर चोट चट्टान पर अपना प्रभाव डाल रही है, जो शायद अभी तुम्हें नहीं दिख रहा है। यदि ये बिना हिम्मत हारे इसी तरह निर्धारित लक्ष्य पर प्रहार करते रहेंगे, तो धीरे-धीरे इसमें दरार दिखना शुरू होगी, जो फिर हर प्रहार के साथ गहरी होती जाएगी और एक अंतिम प्रहार ऐसा भी आएगा, जब चट्टान चटक जाएगी व इसके दो फाड़ हो जाएँगे।"

बाबा आगे बोले—''यही साधनात्मक जीवन का भी सत्य है। हमारी आध्यात्मिक उन्नति में बाधक संस्कारों की जटिल चट्टानें रोड़ा बनकर एक भी पग आगे नहीं बढ़ाने देतीं। इन जटिल संस्काररूपी चट्टानों को साधक को ऐसे ही चटकाना होता है, जिन पर प्रारंभिक साधनात्मक पुरुषार्थ निष्प्रभावी से दिखते हैं; लेकिन जब साधक हिम्मत नहीं हारता, अनवरत अथक श्रम व उत्साह के साथ प्रयास जारी रखता है, तो संस्कारों की चट्टानों में दरार पड़ना शुरू होती है और इनकी गहरी जड़ों तक साधक की पहुँच हो जाती है। फिर एक दिन साधक इन्हें चटकाने का सफल पुरुषार्थ भी पूरा कर लेता है। एक-एक कर अपने संस्कारों का परिमार्जन इसी आधार पर संभव होता है।''

यात्रा करते-करते दोनों एक गहरी घाटी में आ पहुँचे थे। बाबा घाटी की गहराई इंगित करते हुए बोले—''शीलधर्म! हमें भ्रम हो सकता है कि हम ये कहाँ घाटी की तली में आ गए; जबकि हमें तो शिखर पर पहुँचना था, लेकिन जब शिखर का रास्ता ही खाई से होकर जाता हो तो बीच-बीच में खाइयों को पार करना पथिक की नियति बन जाती है। अत: इसे रास्ते का आवश्यक विधान मानते हुए इनसे विचलित न होना चाहिए, वरन एकनिष्ठ दृष्टि के साथ लक्ष्य पर केंद्रित हो मार्ग पर आगे बढ़ना चाहिए।''

यात्रा के प्रत्येक पड़ाव पर शीलधर्म की बुद्धि के कपाट खुल रहे थे व साधनात्मक जीवन के नए समाधान मिल रहे थे। उसे समझ आ रहा था कि जीवन आध्यात्मिक हो या भौतिक, सफलता का मार्ग छोटे-छोटे प्रयासों व इनकी निरंतरता के आधार पर तय होता है। हम किसी भी प्रयास को पूर्णतया असफल नहीं कह सकते हैं। दिखने में असफल प्रयास भी अंतिम सफलता या पूर्णता के अनिवार्य सोपान होते हैं। अत: यदि लक्ष्य स्पष्ट है तो मार्ग की असफलताओं से विचलित होने की आवश्यकता बिलकुल भी नहीं है; क्योंकि ये सफलता की स्वाभाविक सीढ़ियाँ हैं।

अत: शीलधर्म को समझ आ रहा था कि साधनात्मक प्रयासों की असफलता को वह कुछ अधिक गंभीरता से लेकर अनावश्यक रूप में हैरान-परेशान हो रहा था, जिससे अब वह उबरने की स्थिति में आ चुका था। इस नई समझ के साथ शीलधर्म बाबा प्रज्ञाचक्षु के प्रति कृतज्ञ हो, उन्हें साष्टांग प्रणाम कर अपने घर की ओर चल पड़ा और दुगने उत्साह के साथ अपने साधनात्मक प्रयास में संलग्न हो गया। ❑

विद्यार्थियों को आपस में झगड़ते देख गुरु उन्हें समझाते हुए बोले—''याद रखो! संपूर्ण जगत एक शरीर है। तुम्हारे शरीर में हाथ, नख एवं उँगली की तरह ही एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। यदि हाथ, उँगली या नाक शरीर से पृथक होकर अलग कट जाते हैं तो फिर उनका सारा महत्त्व ही नष्ट हो जाता है। आत्मा तभी सच्चे अर्थों में आत्मा है, जब वह अपने को परमात्मा का एक अंश अनुभव करे। विराट विश्व का एक कण ही तो मनुष्य है। अखिल विश्व की आत्मा से हम अपने को पृथक न समझें। हाथ का कल्याण इसी में है कि वह अपना हित समस्त शरीर के हित के साथ जुड़ा रखे, किसी भी अंग को अभाव या कष्ट हो तो उसके निराकरण का उपाय करे। यदि हाथ अपना यह कर्त्तव्य धर्म छोड़ दे और कलाई तक ही अपने को सीमित कर ले तो वह स्वयं नष्ट होगा और सारे शरीर को नष्ट करेगा। संकीर्णता ही पतन और विशालता ही उत्थान है। कोई विराना नहीं, सब अपने ही हैं। सबके कल्याण में अपना कल्याण समाया हुआ है। शिष्यों की समझ में आया कि परस्पर वैमनस्य और मतभेद से किसी का कल्याण नहीं होता। विश्वकल्याण में ही आत्मकल्याण समाहित है।

कर्म की खेती

सामान्य कर्म सामान्यतया कामनाओं से, लालसाओं से, इच्छाओं से, लोभ से, भय से, आसक्ति से और फल की तीव्र आकांक्षा से जुड़ा होता है। कुछ पाने की इच्छा ही हमारे अंदर कर्म करने का भाव पैदा करती है और फिर जो फल हम पाना चाहते हैं, उसके लिए कोई भी मार्ग हमें उचित लगता है। फिर हम यह बात नहीं याद रखते कि प्रकृति की भाषा कर्म है।

स्वामी विवेकानंद लिखते हैं—

फल अशुभ कर्मों के हैं अशुभ
शुभ कर्मों के हैं शुभ फल।

इस संसार में कर्म फलता है। कई कारण हैं, कई बातें हैं; जो कर्म और कर्मफल के बीच की हैं। ठीक वैसे ही, जैसे कई बातें हैं; जो बीज और किसान के बीच में हैं। बीज, किसान खेत में बोता है, लेकिन हर खेत में बीज नहीं उपजता है। उसके लिए किसान खेत को तैयार करता है, सिंचाई करता है, निराई करता है, गुड़ाई करता है और सबसे पहले जुताई करता है। बार-बार खेत को जोता जाता है।

गरमी की ऋतु में, जब ज्येष्ठ में सूरज तपता है, तब भी किसान हल लिए खेत में जुताई कर रहा होता है। क्यों? कहते हैं कि अगर गरमी में खेत में जुताई की जाए और उस पर पहली बरसात पड़े तो सूरज की किरणों से, सूरज के ताप से उसकी उर्वरता बढ़ जाती है। जो खेती करने वाले होते हैं वो यह बात जानते हैं। पहले गरमी के मौसम में जब हमारी फसल कटी, तो फिर उसके बाद खेत जोता जाता है। उसके सारे खरपतवार निकाले जाते हैं। फिर उसमें खाद डाली जाती है—कंपोस्ट की, गोबर की खाद डाली जाती है और जब खाद पड़ी तो जब उसके बाद उस खेत में बरसात का पानी आता है, तब खेत फिर नई फसल के लिए तैयार होता है। जुताई के बाद, खाद के बाद, धूप लगने के बाद, मिट्टी उर्वर और भुरभुरी होने के बाद खेत की मिट्टी नए बीज को धारण करने के लिए तैयार होती है। कर्म और कर्मफल के बीच भी यही दूरी है।

अच्छी खेती के लिए पहले खेत की मिट्टी सही होनी चाहिए। मिट्टी में ताकत होनी चाहिए। बीज को पुष्ट होना चाहिए। मरे, सड़े-गले बीज नहीं उगा करते। खेत की भूमि उर्वर होनी चाहिए। उसके बाद, इतने तक ही बात नहीं खतम हो जाती। खेत जब उर्वर होता है, मिट्टी ठीक होती है, बीज सुपुष्ट होता है; उसके बाद उसकी समय-समय पर सिंचाई, निराई, गुड़ाई होनी चाहिए। समय पर उसे खाद-पानी बार-बार मिलना चाहिए। ऐसा नहीं कि खेत में बीज बो दिया और बात खतम हो गई।

इसके आगे जब खेत में फसल आ जाए तो कौओं, पक्षियों, वन्यपशुओं से फसल की रक्षा करनी चाहिए। जब इतने दिन हम छह-आठ महीने बीज, खेत और फसल का ध्यान रखते हैं, फिर किसान फसल की कटाई करता है, उसकी मढ़ाई होती है। गेहूँ या धान अपने पुआल या भूसे से अलग होता है और उसके बाद कितनी मेहनत-मशक्कत के बाद फसल किसान के घर आती है।

यही स्थिति, यही बात कर्म के बारे में भी है। कर्म भी कृषि-कर्म है, खेती का कर्म है। कैसे? जो हम कर्म करते हैं, वो कर्म हम किस खेत में बो रहे हैं? वो कर्म हम बोते हैं—चित्तभूमि में। लगता है कि हम बाहर कर्म कर रहे हैं; लेकिन उस कर्म का बीज हमारे चित्त में संगृहीत होता है। इसीलिए चित्त जिसमें कर्माशय उपस्थित होता है, वह कर्माशय वस्तुतः हमारे कर्मबीजों का संग्रह है। दूसरे शब्दों में कर्म के बीज चित्त के खेत में हैं।

हम जिस जीवनरूपी खेत में कर्म बोते हैं, उसकी फसल हमारे चित्त में आती है। इसलिए चित्तभूमि मजबूत होनी चाहिए। कैसी? शुद्ध, स्वच्छ, साफ। और वो हमारी पापभूमि नहीं होनी चाहिए; बल्कि पुण्यभूमि होनी चाहिए। जो पाप हमारे भीतर हैं, दुष्कर कर्म हैं, जटिल कर्म हैं; उनके लिए बार-बार जुताई चाहिए, बार-बार खाद चाहिए। हमारा चित्त अनेक अशुद्ध कर्मों से उर्वर नहीं रह गया है।

हम देखते हैं कि हमने कर्म तो किए, लेकिन फिर उसका फल क्यों नहीं है ? फल इसलिए नहीं है; क्योंकि हमें अनुभवी किसान की तरह कर्म करना नहीं आता। किसान चुप नहीं बैठता। रबी की फसल यानी जब गेहूँ पक जाता है, गेहूँ की फसल आ जाती है तो खरीफ की फसल के लिए, धान की फसल के लिए, उड़द के लिए, मूँग के लिए वो फिर खेत में कर्म करता है।

रबी, खरीफ और जायद—तीन फसलें होती हैं और जो चतुर किसान होते हैं, वो एक ही समय में तीनों फसल ले लेते हैं। कैसे ? खेत की उर्वरता को, खेत की मिट्टी को कमजोर नहीं पड़ने देते। इसी तरह जो चतुर कर्म करने वाला होता है, वो अपने पुण्य को, तप को कमजोर नहीं पड़ने देता। पुण्यकर्म, शुभकर्म उसकी जुताई हैं और हमारा जो तप है, वो उसकी खाद है।

अगर पुण्य प्रबल है और तप प्रखर है तो इसका तात्पर्य है कि हमारी चित्तभूमि बहुत उर्वर है और अगर कर्म श्रद्धा के साथ, मनोयोग के साथ और प्रबल पुरुषार्थ के साथ किया गया है, इसका मतलब वो उस चित्तभूमि में पड़ने वाला कर्मरूपी सुपुष्ट बीज है। आधे-अधूरे मन से किया जाने वाला कार्य कर्म नहीं होता है और उस कर्म का बीज भी खराब होता है।

बड़ी विचित्र और विडंबना की बात है कि हम जब बुरे कर्म करते हैं तो उनमें हमारी प्राण-ऊर्जा, नकारात्मक ही सही, पूरे वेग से लगती है। हम जब किसी के साथ ईर्ष्या करते हैं, द्वेष करते हैं या उसके बारे में बुरा सोचते हैं तो पूरे आवेग के साथ सोचते हैं, पूरे पुरुषार्थ के साथ सोचते हैं, पूरे मनोयोग के साथ वो कार्य करते हैं। हम जब भले कर्म करते हैं तो ढीले-ढाले मन से करते हैं, तब हमारे अंदर वो श्रद्धा, वो पराक्रम, वो पुरुषार्थ और वो आवेग नहीं रहता है। पता नहीं क्यों ? नकारात्मक कार्यों में तो हम आवेग में रहते हैं; लेकिन सकारात्मक कर्मों में हम आवेग में नहीं रहते हैं।

पतंजलि कहते हैं—श्रद्धा, से जल्दी योग फलता है। तो बात इतनी-सी है कि कर्म हम कैसे करें ? पहले तो आपका कर्म कैसा है ? वो पुरुषार्थ कैसा है, वो श्रद्धा क्या है, वो मनोयोग क्या है ? वो प्रबल आवेग हमारे अंदर है या नहीं ? वो कर्म क्या है ?

दूसरी बात हमारा खेत कैसा है ? जीवन का जो खेत है, क्या वो पुण्यकर्मों से उर्वर है ? क्या वो तप से प्रखर है ? किसान अपने खेत की बार-बार जुताई करता है। जब लोग घर में आराम कर रहे होते हैं; तब किसान खेत जोत रहा होता है और केवल एक फसल की बात नहीं। रबी की फसल की बात नहीं। जो मूँग है, उड़द है, जो इस तरह की दालें होती हैं, बेल वाली, हलके पेड़ वाली जो दालें होती हैं, जो पौधे होते हैं तो लोग उस फसल को बोते हैं और दाल निकाल लेते हैं और उसके बाद उस पूरी फसल को फिर से खेत में जोत देते हैं।

बीज की फलियाँ निकाल करके बाकी उसमें जो पत्ते होते हैं, जो डालें होती हैं, जो तना होता है—उसकी जुताई कर देते हैं तो वो खाद बन जाती है। जो मूँग, उड़द

उपदेश की सफलता इस बात में नहीं कि सुनने वाले उसकी प्रशंसा करते चले जाएँ। जिसे सुनने के बाद वे लोग चिंतनशील, गंभीर और परिवर्तन-निरत दिखाई पड़ें तो उसे सफल उपदेश समझना चाहिए। —*परमपूज्य गुरुदेव*

किसान खेत में बोते हैं तो मूँग, उड़द की फलियाँ तो तोड़ लेते हैं; लेकिन उनके पत्तों को, पेड़ को जड़ से नहीं निकालते हैं, फली-फली तोड़ते हैं। बाकी उसको पूरी-की-पूरी तरह से खेत में ही दफन कर देते हैं। सनई बोते हैं, उसका जूट तो निकाल लेते हैं, उसकी रस्सी बना लेते हैं; लेकिन कई बार पूरी सनई खेत में ही जोत देते हैं। क्यों ? क्योंकि खेत की उर्वरता बनी रहनी चाहिए। चतुर किसान अपने खेत की उर्वरता को कभी नष्ट नहीं होने देता।

अच्छा कर्म करने वाला, अच्छा पुरुषार्थी व्यक्ति अपने चित्तभूमि की उर्वरता को नष्ट नहीं होने देता। हमेशा शुभ कर्मों का संचय अनवरत रखता है; ताकि हमारी चित्तभूमि उर्वर बनी रहे और उसमें बोए जाने वाले शुभ कर्मों के बीज अपना शुभ फल दे सकें। ❑

युगगीता — 238

नाशवान शरीर और अविनाशी आत्मा है पुरुषोत्तम का आधार

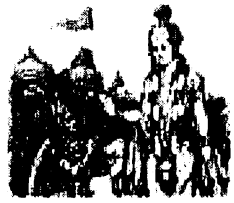

(श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तमयोग नामक पंद्रहवें अध्याय की पंद्रहवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के पंद्रहवें अध्याय के पंद्रहवें श्लोक की विवेचना इससे पूर्व की किस्त में प्रस्तुत की गई थी। उसमें श्रीभगवान कहते हैं कि मैं ही संपूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ तथा मेरे ही द्वारा स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय आदि दोषों का नाश) होता है। मैं ही संपूर्ण वेदों के द्वारा जानने योग्य हूँ, वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला तथा वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ। भगवान श्रीकृष्ण इस सूत्र में अर्जुन को कहते हैं कि परमेश्वर के रूप में वे अंतर्यामी हैं और इसीलिए हृदय में वे विशेष रूप से उपस्थित हैं। अर्थात जिनका भी अंतःकरण शुद्ध, स्वच्छ एवं निर्मल होता है—उनके हृदय में परमात्मा के सहज दर्शन संभव हैं। इसीलिए परमात्मा को अंतर्यामी भी कहा जाता है; क्योंकि अंतर्यामी का अर्थ है—जो भीतर की खबर रखता हो। बाहर जो चल रहा है, उसको जानने के तो अनेक तरीके हैं, अनेक माध्यम हैं; परंतु जो भीतर चल रहा है, भीतर जो छिपा है, उसको जानने वाला अंतर्यामी कहलाता है। सबको छोड़ने के बाद, सबको नकारने के बाद ही भगवान के इस स्वरूप तक पहुँचा जा सकता है; क्योंकि उनका यह स्वरूप ही ज्ञान का अंतिम शिखर है। श्रीभगवान कहते हैं कि परमात्मा उसी अंतर्यामी स्वरूप में हमारे भीतर उपस्थित हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि उनके इस स्वरूप के द्वारा ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है। अपोहन का अर्थ है—उलझन का अंत। हमारे मन में हर समय कोई-न-कोई उलझन, ऊहापोह सदा बने रहते हैं। इनका अंत तभी होता है, जब चित्त सदा के लिए शांत, शुद्ध एवं निस्तब्ध हो जाए। ऐसा तभी होता है, जब हम सभी तरह के संशयों से सदा के लिए मुक्त हो जाएँ। ऐसा ज्ञान ही वेदों का अंतिम निष्कर्ष, वेदों को जानने वाला एवं वेदों के तत्त्व का निर्णय करने वाला है। यह ज्ञान सभी के हृदय में सदा उपस्थित है और इसी को भगवान श्रीकृष्ण अपना अंतर्यामी रूप कहते हैं। उनके इस सर्वत्र, सर्वज्ञ एवं शाश्वत स्वरूप की प्राप्ति ही हर साधक की साधना का अंतिम ध्येय कही जा सकती है।]

इसके बाद श्रीभगवान अपना अगला सूत्र कहते हैं कि—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥ 16॥

शब्दविग्रह—द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च, अक्षरः, एव, च, क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते॥

शब्दार्थ—इस संसार में (**लोके**), नाशवान (**क्षरः**), और (**च**), अविनाशी (**अक्षरः**), भी (**एव**), ये (**इमौ**), दो प्रकार के (**द्वौ**), पुरुष हैं (इनमें) (**पुरुषौ**), संपूर्ण (**सर्वाणि**), भूत प्राणियों के शरीर (तो)(**भूतानि**), नाशवान (**क्षरः**), और (**च**), जीवात्मा (**कूटस्थः**), अविनाशी (**अक्षरः**), कहा जाता है (**उच्यते**)।

अर्थात—इस संसार में क्षर (नाशवान) और अक्षर (अविनाशी) ये दो ही प्रकार के पुरुष हैं। संपूर्ण प्राणियों के शरीर को क्षर और जीवात्मा को अक्षर कहा जाता है। श्रीभगवान ने गीता के सातवें अध्याय में परा तथा अपरा नाम से जिन प्रकृतियों का वर्णन किया था, आठवें अध्याय में अधिभूत तथा अध्यात्म के नाम से जिनका उल्लेख किया था एवं तेरहवें अध्याय में क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के नाम से जो वर्णित किया था, वैसे ही संदर्भ में यहाँ दो प्रकार के पुरुषों का वर्णन वे करते हैं। एक को नाशवान तथा दूसरे

को अविनाशी बताते हैं। आत्मा को कूटस्थ अर्थात अपरिवर्तनीय बताते हुए वे कहते हैं कि इस आत्मा का किसी भी अवस्था में क्षय, नाश या अभाव नहीं होता, इसलिए यह अक्षर है।

इनमें से नाशवान संसार में गतिविधि करता, कर्म करता, बंधन में पड़ता तथा मुक्त होता दिखाई पड़ता है तो अविनाशी आत्मा, परमात्मा सभी बंधनों व क्लेशों से परे साक्षीभाव के साथ इस सांसारिक चक्र का आनंद लेता दिखाई पड़ता है। प्रश्न उठता है कि ये दोनों एकदूसरे से इतना भिन्न व विरोधी दिखते हुए भी एक ही उद्गम का अंश कैसे हैं ? इसका उत्तर गीता स्वयं यह कहकर प्रदान करती है कि वस्तुतः दोनों भिन्न कभी थे नहीं व कभी हो नहीं सकते। मात्र क्षर ने स्वयं को माया के बंधनों में बाँध लिया है। अतः वह अपने सदा स्वच्छंद, मुक्त, अविनाशी स्वरूप को भूल बैठा है। इसी को आचार्य शंकर—'**ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या**' कहकर पुकारते नजर आते हैं। जब हम माया से पार चले जाते हैं तो जगत् नहीं बदलता; बल्कि हमारा जगत् के प्रति संबंध बदल जाता है।

सही पूछा जाए तो यह सूत्र पुरुषोत्तम होने की व्याख्या करता है। भगवान श्रीकृष्ण यहाँ कह रहे हैं कि इस सृष्टि में दो प्रकार के पुरुष हैं—एक नाशवान है और एक अविनाशी है। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि इस नाशवान जगत में ही एक अविनाशी और अपरिवर्तनीय पुरुष छिपा हुआ है। हमारा जो शरीर है; वह तो नाशवान है, प्रतिपल नष्ट हो रहा है, बदल रहा है, परिवर्तित हो रहा है। इसके भीतर एक ऐसी सत्ता विद्यमान है; जो कि अमर है, अविनाशी है, अपरिवर्तनीय है। वह तत्त्व ही पुरुषोत्तम है।

पुरुषोत्तम प्रत्येक प्राणी में छिपा हुआ है। शरीर एवं मन की परतों के भीतर उसी की उपस्थिति है। श्रीभगवान कहते हैं कि संपूर्ण प्राणियों के शरीर तो क्षर अर्थात नाशवान हैं, दूसरी आत्मा है जो अविनाशी है। इन दोनों के क्रियाकलापों को देखने वाला पुरुषोत्तम है। यह शरीर जन्म, मृत्यु, वृद्धि, अपक्षय आदि विकारों के होने के कारण नष्ट हो जाता है; जबकि आत्मा—अजन्मा, नित्य, शाश्वत, पुण्य एवं अविकारी होने के कारण स्वयं में पूर्ण है, उसमें किसी भी प्रकार की कामना के लिए कोई स्थान नहीं। जो स्वयं में पूर्ण है, तृप्त है, कामनारहित है, उसमें कामना से उत्पन्न होने वाला कर्त्ताभाव तथा उससे प्रेरित होकर कर्म करने की कल्पना ही असंभव है। जो आत्मस्वरूप का ज्ञाता है, जो अपने यथार्थस्वरूप में प्रतिष्ठित है, जो अविनाशी, अजन्मा, सदा एक रस रहने वाले आत्मस्वरूप को जानता है।

यह शाश्वत शरीर जन्म से पहले नहीं था, वह तो जन्म के साथ ही अस्तित्व में आया है; किंतु आत्मा के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है, वह तो तीनों कालों में एक समान रहने वाली है। छह प्रकार के विकारों से युक्त होना शरीर का सहज धर्म माना गया है। जन्म लेना, अस्तित्व में रहना, वृद्धि यानी बढ़ना, क्षीण होना, कुछ

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा।
देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः॥

अर्थात कर्म करने वाले, सुख प्रदान करने वाली वाणी के मंत्रों का पाठ करें। परस्पर सहभाव से रहते हुए, अनुष्ठान करते हुए अपने घर को प्रस्थान करें।

काल तक बने रहना एवं फिर नष्ट हो जाना। इन छह प्रकार के विकारों से युक्त जो है, वह शरीर है, आत्मा नहीं। अविनाशी आत्मा में ये सारे दोष एवं विकार नहीं होते।

अविनाशी न तो कभी जन्मता है, न कभी मरता है, न कभी होता है और न कभी होकर पुनः ही होता है। यह अजन्मा है, किसी संघात विकार से उत्पन्न होने वाला नहीं है। यह नित्य है, अतः क्षय-क्रिया रूप व्यापार से रहित है। यह शाश्वत अर्थात अविनाशी है। शरीर का जन्म होता है, वह परिवर्तनशील है। उसका क्षय भी होता है, वह नाशवान तथा क्षीणता को प्राप्त होने वाला है; किंतु अविनाशी आत्मा इन समस्त विकारों से रहित है। आत्मा के षट्विकारों से रहित होने के कारण ही वह अविनाशी है। इस सत्य को जानने वाला ही पुरुषोत्तम के रहस्य को जान पाता है।

(क्रमशः)

उदारता-बड़प्पन व परिपक्वता की निशानी

उदारता परिपक्व जीवन की निशानी है। जब कोई बिना आशा-अपेक्षा के मुक्तहस्त से अपना कोई अंश बाँटता है, तो यह उसकी उन्नत आंतरिक स्थिति का द्योतक होता है। स्वार्थ एवं अहंकेंद्रित व्यक्तियों को यह उदारता मूर्खतापूर्ण कृत्य लग सकती है या नासमझी मालूम पड़ सकती है; लेकिन वास्तव में यह दानवीर की साहसिक दूरदर्शिता होती है, जिसके साथ वह एक कुशल कलाकार की भाँति जीवन की पारी को खेल रहा होता है।

जब व्यक्ति की चेतना पर्याप्त उन्नत हो जाती है, तो उदारता उसका स्वभाव बन जाती है। दिए बिना उसे चैन नहीं पड़ता। अगर कोई जरूरतमंद आस-पास हो तो फिर तो उसकी करुणा सहज ही उस ओर प्रवाहित हो उठती है। समय की माँग पर ऐसे दानवीर अपना कोश पूरी तरह लुटाने से नहीं चूकते और अद्‌भुत दुस्साहस करते देखे जा सकते हैं, जिसकी सामान्य व्यक्ति कल्पना भी नहीं कर सकता। उसके लिए ऐसे पलों में घाटा-नफा कोई मोल नहीं रखते।

प्रत्यक्ष घाटा दिखते हुए भी ऐसा व्यक्ति वास्तव में घाटे में नहीं रहता। त्याग-बलिदानपूर्ण कृत्यों को समय की माँग के अनुरूप अपने कर्त्तव्य का पालन मानते हुए उदार व्यक्ति अपार संतोष का भागी बनता है, फिर बिना किसी अपेक्षा के किसी दु:खी के आँसू पोंछने व उसकी जरूरत को पूरा करने का संतोष उसे अतिरिक्त प्रसन्नता देता है और व्यक्ति को भावनात्मक रूप से सशक्त बनाता है। जब हर इनसान में ईश्वर का वास है तो दीन-हीन-दु:खी एवं आर्त्त व्यक्ति की सेवा को उदारचेता ईश्वर की सच्ची आराधना मानता है।

यहाँ बोओ-काटो का कर्मफल सिद्धांत भी लागू होता है। ईश्वर के विराट ब्रह्मांड एवं समाज में उदारतापूर्ण किए सहयोग की प्रक्रिया में हम एक बीज बो रहे होते हैं, जो समय पर फलित होता है। जैसे गेहूँ का एक बीज, एक पौधे के रूप में सैकड़ों-हजारों बीजों को तैयार करता है, ऐसे ही समाजरूपी खेत में सहयोग-सहकार एवं सद्‌भावपूर्ण दान कर बोया गया बीज समय आने पर नाना रूपों में फलित होता है। इसे ही हम कालांतर में पुण्यों का फलित होना कहते हैं।

एक समझदार व्यक्ति कर्मफल सिद्धांत की इस प्रक्रिया को समझता है, इसके विज्ञान की समझ व्यक्ति को सहज रूप से उदार बनाती है। वह समाजरूपी खेत में अपने पास उपलब्ध समय, श्रम, धन, साधन, योग्यता, विभूति, प्रभाव या गुणों की संपदा को पुण्यबीज की भाँति मुक्तहस्त से बाँटता है, बिखेरता है और बोता है। फल को ईश्वर के हाथ में छोड़कर एक दूरदर्शी किसान की भाँति इसके फलित होने के प्रति आश्वस्त रहता है, जिसको फलित होने से वस्तुत: कोई रोक भी नहीं सकता। यही समझदार, दूरदर्शी एवं परिपक्व व्यक्ति की निशानी होती है। जीवन में सच्ची सुख-शांति एवं प्रसन्नता का वह सहज रूप में अधिकारी बनता है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006
Yes Bank	Dampier Nagar, Mathura	YESB0000072	007263400000143

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

युवाओं का रचनाधर्मी लेखन

किताब-लेखन के संदर्भ में युवाओं की रुझान रचनाधर्मी हो रही है। ये यथार्थपरक एवं मूल्यपरक विषयों पर लिख रहे हैं। प्रसिद्ध लेखक अमीश त्रिपाठी देश के प्रति अपने नजरिए से पाठकों को अवगत कराना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने काल्पनिक नहीं, बल्कि मूल्यपरक लेखन को जरिया बनाया। कुछ दिनों बाद उनकी किताब प्रकाशित होने वाली है 'अमर भारत'। इसमें उन्होंने धर्म, इतिहास, नागरिकों के अधिकारों, नारीवाद तथा देश के कई अन्य ज्वलंत मुद्दों पर अपना दृष्टिकोण रखा है। अमीश कहते हैं—''हम सब यह अच्छी तरह जानते हैं कि यदि देश का भला होगा, तो हर नागरिक का भला होगा। फिर भी हम लोगों ने इसको कुछ हद तक अपने हक तक ही सीमित कर दिया है। देश के प्रति कर्त्तव्य के बारे में तो कोई सोचता ही नहीं है; जबकि दोनों के बीच संतुलन जरूरी है। हम दूसरों के लिए कानून की बात तो करते हैं, लेकिन स्वयं रात बारह बजे लाल बत्ती पर रुकना नहीं चाहते।''

इस तरह के और भी कई मुद्दे हैं, जिन पर यथार्थपरक टिप्पणी करने के लिए अमीश ने पहली बार मूल्यपरक किताब लिखी है। अमीश के अलावा संजीव सान्याल, संदीप देव, प्रांजल धर, राजीव रंजन प्रसाद, नालोत्पल मृणाल, राजीव गुप्ता, सचिन गर्ग आदि कई युवा लेखक अब प्यार, रिश्तों आदि पर काल्पनिक कहानी लिखने के बजाय देश, देशहित और देश की समस्याओं पर रोचक मूल्यपरक किताबें लिख रहे हैं। प्रकाशक भी मानते हैं कि कल्पना के बजाय यथार्थ घटना से संबंधित किताबों का बाजार बढ़ा है।

अर्थशास्त्री, पर्यावरणविद् और वित्तमंत्रालय में आर्थिक मामलों के प्रधान सलाहकार संजीव सान्याल एक इंटरव्यू में अपना परिचय देते हैं—'मैं विचारों से भरा हूँ न कि निजी जीवन के लक्ष्यों से।' वास्तव में वे देश की समस्याओं और देशहित संबंधी कई विचारों से परिपूर्ण हैं, जिन पर लगातार लिख रहे हैं। 'लैंड ऑफ दि सेवन रिवर्स', 'इनक्रेडिबल हिस्ट्री ऑफ इंडियाज ज्योग्राफी', 'दि ओशन ऑफ चर्न' जैसी उनकी यथार्थ घटनापरक किताबों को पाठक खूब चाव से पढ़ते हैं। वे कहते हैं—'मुझे लगा कि देश के इतिहास को भारतीय परिप्रेक्ष्य में नहीं लिखा जा रहा है। आज भी औपनिवेशिक या वामपंथी विचारधारा से प्रभावित होकर ही ज्यादातर किताबें लिखी जा रही हैं।' यह सच है कि भारत विविधताओं वाला देश है। यदि यहाँ के बारे में, यहाँ के विचार और अलग-अलग विषयों के बारे में यथार्थपरक होकर लिखा जाए, तो लेखक को कल्पना के आधार पर कहानियाँ लिखने की जरूरत ही महसूस नहीं होगी। लेखक प्रांजल धर के अनुसार—'देश और समाज के लिए भलाई की बातें कहने के लिए यथार्थपरक रचनाएँ यानी नॉन फिक्शन ही खरी उतरती हैं।'

आज नक्सलवाद देश की बड़ी समस्या है, इसीलिए राजीव रंजन प्रसाद ने बस्तर पर 'आमचो बस्तर' जैसा यथार्थवादी उपन्यास लिखा है। वे कहते हैं कि 'बस्तर में पलने-बढ़ने के कारण मैं वहाँ की समस्याओं से अच्छी तरह वाकिफ हूँ। मैंने पाया कि वहाँ की स्थितियों पर जो आलेख लिखे जा रहे हैं, वे यथार्थ से जरा भी मेल नहीं खाते। वहाँ की सचाई उजागर करने के लिए ही मैंने यह यथार्थपरक उपन्यास लिखा।' वहीं सचिन गर्ग ने अंडमान निकोबार द्वीप समूह की जारवा जनजाति की सचाई को अपने उपन्यास 'वी नीड ए रिवॉल्यूशन' की विषयवस्तु बनाया। **वी नीड ए रिवॉल्यूशन** में बहुत प्रमाणिक तथ्य दिए गए हैं।

इन सबसे अलग प्रांजल धर ने लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहलाने वाली पत्रकारिता के सच को किताब में उजागर किया है। प्रांजल कहते हैं—'पत्रकारिता के पाठ्यक्रम की पढ़ाई करने और इसमें नौकरी करने के बाद मुझे पता चला कि यहाँ सब कुछ ठीक नहीं है। पाश्चात्य समाज में प्रेस नाम की भी एक चीज होती है, जिसके अंतर्गत किस पत्रकार ने क्या गलत और क्या अच्छा किया, यह भी दिखाया जाता है। भारत में इसका अभाव है। इसलिए मैंने

सबकी खबर लेने वाली पत्रकारिता की खबर लेने की ठानी और 'मीडिया और हमारा समय', 'समकालीन वैश्विक पत्रकारिता में अखबार' जैसी यथार्थपरक किताबें लिखीं।'

भारत के नागरिकों में यदि देशभक्ति के जज्बे को जगाना है तो देश और धर्म को लेकर विवेकानंद के विचार, महात्मा गांधी के स्वतंत्रता संघर्ष, यहाँ तक कि कस्तूरबा गांधी के अमूल्य योगदान को भी सामने लाना होगा। ऐसा कहते हैं राजनीति और समसामयिक विषयों पर लिखी गई किताबों के सुधी पाठक अनिल सिंह। चंपारण में महात्मा गांधी के आने पर उस समय बिहार की पत्र-पत्रिकाएँ किस तरह लिख रही थीं, यह जानने की जिज्ञासा बिहार के लेखक आशुतोष पार्थेश्वर के मन में हमेशा रहती थी। वे बताते हैं कि 'उस समय की 'स्त्री दर्पण' पत्रिका चंपारण का संदर्भ देती है; लेकिन हिंदी साहित्य की बड़ी पत्रिका 'सरस्वती' अपने पन्ने पर चंपारण को कहीं भी जगह नहीं देती है। ऐसे विरोधाभास या अंतर्विरोध की झलक अपनी किताब के लिए किए गए शोध से ही मिली।'

आशुतोष की ही तरह लेखक राजीव गुप्ता को भी लगता था कि देश विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में तभी खड़ा हो सकता है, जब युवा पीढ़ी स्वामी विवेकानंद को यथार्थपरक तरीके से जान पाएगी न कि मनगढंत कहानियों द्वारा। वे कहते हैं—'अमेरिका के शिकागो धर्म सम्मेलन में विवेकानंद ने धर्म की किस तरह सर्वमान्य व्याख्या की, युवाओं के लिए यह भी जानना बेहद जरूरी है। इसलिए मैंने स्वामी विवेकानंद के जीवन पर घटनापरक किताब लिखी। महात्मा गांधी के बारे में तो लोग बहुत जानते हैं; लेकिन देश की आजादी में कस्तूरबा गांधी का कितना अहम योगदान रहा, कम को ही पता है। कस्तूरबा के माने बताने के लिए नीलिमा डालमिया ने 'दि सीक्रेट डायरी ऑफ कस्तूरबा' लिखी। वे कहती हैं—'हालाँकि इसे काल्पनिक की श्रेणी में रखा गया; लेकिन इसमें प्रमाणिक तथ्य भी खूब दिए गए हैं।'

अरुण आनंद ने कई जीवनगाथाएँ लिखीं। उन्होंने 'ऑर्गन डोनेशन', 'नो अबाउट आरएसएस', 'इंडियन दि नोबल लॉरेट' जैसी विशुद्ध तथ्यपरक किताबें भी लिखीं। इन सभी से बिलकुल अलग लिखते हैं पंकज प्रसून। चुनाव, बेरोजगारी, राजनीति की विसंगतियाँ, नोटबंदी, जाति के समीकरण, विकास के नाम पर राजनीतिक पार्टियों का ध्रुवीकरण जैसे अलग-अलग मुद्दों पर वे व्यंग्यात्मक आलेख और कविताएँ लिखते हैं। वे कहते हैं—''हमें ऐसा लगा कि फिक्शन कभी भी व्यवस्था पर चोट नहीं करता है; लेकिन व्यंग्य तो सिर्फ व्यवस्था में सुधार लाने के लिए ही चोट करता है। इसलिए मैंने लिखा—'जनहित में जारी।' व्यंग्य की उनकी दूसरी किताब—'प्रसून के पंच' कुछ समय बाद प्रकाशित होने वाली है।'' अरुण आनंद के अनुसार—काल्पनिक किताबें कम समय में लिख ली जाती हैं; जबकि तथ्यपरक किताबें न सिर्फ समय की माँग करती हैं, बल्कि उनमें तथ्य भी अधिक देने पड़ते हैं।

भारतीय सैनिकों पर अपनी तीसरी किताब—'शूट, डाइव, फ्लाई' लिख रहीं रचना बिष्ट रावत के पति, पिता और भाई सेना में हैं। कुछ साल पहले जब उनके पति का तबादला भारत-पाकिस्तान सीमा पर स्थित फिरोजपुर (पंजाब) में हुआ, तो एक दिन वहाँ उन्होंने दीवार पर ऐसे सैनिकों के पोस्टर चिपके देखे, जिन्हें परमवीर चक्र मिल चुका था। वे कहती हैं—''आश्चर्यजनक बात यह है कि भारत के बहुत से लोगों को परमवीर चक्र प्राप्त सैनिकों के बहादुरी भरे कारनामों के बारे में कोई खास जानकारी नहीं है। इसलिए 'शूरवीर' और '1965 भारत-पाक युद्ध की वीरगाथाएँ' में मैंने सैनिकों की वास्तविक कहानियाँ लिखीं। असल में लिखते समय सच का होना ही महत्त्वपूर्ण है।''

आपत्तियाँ एक प्रकार की ईश्वरीय चेतावनियाँ हैं, जिनसे ठोकर खाकर मनुष्य सजग हो और गलत मार्ग से पीछे लौटे।

रचना के मुताबिक—'हमें लगता है कि युवा सिर्फ अपने बारे में सोचते हैं, उनके लिए देशभक्ति कोई माने नहीं रखती है; लेकिन भारतीय सैनिकों पर लिखीं घटनापरक किताबें सबसे अधिक युवा ही पढ़ते हैं।' किताबें ऐसी होनी चाहिए, जो हमारी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करें, हमें कुछ अच्छा करने के लिए प्रेरित करें। जो हमें हमारे सांस्कृतिक मूल्यों से परिचित कराएँ—आज ऐसी किताबों की आवश्यकता है। सराहनीय बात है कि हमारे युवा इस ओर अपनी लेखनी उठा रहे हैं। ❑

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—२

समग्र जीवन के सुदृढ़ आधार—योग एवं तप

(उत्तरार्द्ध)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव साधकों को अपने व्यक्तित्व का समग्र रूपांतरण करने के लिए प्रेरित करते हैं। वे कहते हैं कि एक समग्र जीवन के दो सुदृढ़ आध्यात्मिक आधार हैं। इनमें से पहले का नाम योग और दूसरे का नाम तप है। योग का अर्थ उच्चस्तरीय उद्देश्यों के लिए स्वयं के जीवन को समर्पित कर देने से है। जो इस हेतु अपने जीवन को समर्पित करते हैं, वे स्वतः ही ईश्वरीय चेतना से एकाकार हो जाते हैं और उसी मिलन का नाम योग कहा जा सकता है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि सही अर्थों में भावनाओं के परिष्कार का नाम योग है और परिष्कृत भावनाएँ जब परमात्मा के पास से प्रतिध्वनित हो करके लौटती हैं तो साधक के जीवन में जो रूपांतरण करती हैं, वही योग कहा जाता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

भावना की भूमिका में प्रवेश

मित्रो! जीवात्मा और परमात्मा को एक में शामिल होने के लिए हमको गहराई में प्रवेश करना पड़ेगा और भावना की भूमिका में प्रवेश करना पड़ेगा। चेतना की भूमिका में प्रवेश करना पड़ेगा। भावना की भूमिका में प्रवेश करने की हिम्मत आप में नहीं थी। आपने अपने बहिरंग क्रियाकलापों को अपने जीवन के लिए काफी मान लिया और आपने यह बात जान ली कि हमने जो कुछ भी शरीर से कर लिया, वह काफी हो गया। जबान की नोक से जो जप कर लिया, वह काफी हो गया। पुस्तकों में हमने पढ़ लिया, वह काफी हो गया। नाक से पानी पी लिया, कान से घंटी बजने की आवाज को सुन लिया, वह काफी हो गया। तो मित्रो! मैं आपको बालक कहूँगा, बच्चा कहूँगा और गैरजानकार, नासमझ कहूँगा। क्या आप इन सारे-के-सारे क्रियाकलापों को यह मानते हैं कि हमारी जीवात्मा का स्तर ऊँचा हो गया और लक्ष्य पूरा हो गया। वह सब हो गया, जो संत को होना चाहिए था। एक ऋषि को होना चाहिए था।

मित्रो! संत और ऋषि का स्तर बढ़ाने के लिए आपको अपने अहं को ठीक करना पड़ेगा, सुधारना पड़ेगा। अगर आपका अहं काबू में नहीं आया, तो आपके सारे-के-सारे कार्य—जैसे एक टाँग पर खड़े रहना, पानी में बैठे रहना, धूनी तपाते रहना, एकादशी का उपवास करने का मतलब कुछ है ही नहीं, आप सही मान लीजिए। फिर और कोई मतलब नहीं है, अगर आपने दूसरी वाली मंजिल पूरी न की, जिस काम के लिए ये सब कृत्य किए गए थे। साधन काम के लिए किए जाते हैं। साध्य अलग होता है। साधना का महत्त्व अपने आप में होगा।

मैं यह कैसे कहूँ कि साधना का महत्त्व नहीं है; लेकिन साध्य अलग चीज है। साध्य वह है, जो हमारे जीवात्मा के स्तर को सही करता है। ठीक बनाता है और हमारी अहंता का निराकरण करता है। हमारी अहंता का जब निराकरण हो जाता है, तब हम योगी हो जाते हैं। हमने अपने आप को भगवान से जोड़ लिया। जोड़ने के लिए पूजा-पाठ की, स्तोत्र की विधियाँ अपने आप में उपयोगी होंगी। कैसे उपयोग में नहीं होंगी? मैं तो सिखाता रहता हूँ कि ये उपयोगी हैं, पर पूर्ण नहीं हैं, समग्र नहीं हैं।

मित्रो! मैं निवेदन यह कर रहा था कि हमको मूलतः चेतना के स्तर तक प्रवेश करना पड़ेगा। अगर चेतना के स्तर

तक हमारा प्रवेश नहीं हो सकता, तो बात कुछ बनने वाली नहीं है। हमारी अहंता को हलका पड़ना चाहिए और ढीला पड़ना चाहिए। हमारी अहंता को कम होना चाहिए और 'मैं' का भाव हट करके 'हम' में प्रवेश होना चाहिए।

गायत्री का केंद्र

गायत्री मंत्र की सबसे बड़ी विशेषता जो मुझे मालूम पड़ी, सारे-का-सारे जादू जो उसका मालूम पड़ा, उसकी सारी-की-सारी दिशाएँ मालूम पड़ीं, प्रेरणाएँ मालूम पड़ीं, जो प्रकाश मुझे गायत्री के अंदर मालूम पड़ा, उससे मैं धन्य हो गया। मुझे यह मालूम पड़ा कि इसका प्राण कहाँ है? इसका न्यूक्लियस कहाँ है? गायत्री का केंद्र कहाँ है? केंद्र को मैंने सारे में तलाश किया। जो जर्रा होता है, एटम होता है, हमारे जीवाणु होते हैं। हमारे जीवाणु का एक बीच वाला भाग होता है, जिसको हम धुव्रकेंद्र कहते हैं, न्यूक्लियस कहते हैं, नाभिक कहते हैं।

गायत्री का नाभिक कहाँ है? नाभिक को—न्यूक्लियस को तलाश किया, तो मुझे यह मालूम हुआ कि 'धियो यो नः' जो शब्द है, इसका न्यूक्लियस ही है। मैं नहीं हम ..... हम। हमारा 'मैं' जितना ढीला होता चला जाता है, जितना हलका होता हुआ चला जाता है। हमारी अहंता जितनी कम होती चली जाती है और हमारी व्यापकता जितनी विस्तृत होती चली जाती है, हमारा दायरा बढ़ता हुआ चला जाता है।

मित्रो! हम छोटे से दायरे के लिए नहीं हैं। थोड़े से लोगों के लिए नहीं हैं। हम शरीर तक सीमित नहीं हैं। हमारे कुटुंब के लोगों तक, उनकी खुशहाली तक हमारे स्वार्थ सीमित नहीं हैं। हमारे स्वार्थ सारे विश्व तक व्यापक हो गए हैं। अध्यात्म तक व्यापक हो गए हैं। आस्तिकवाद तक व्यापक हो गए हैं। मानवीय पीड़ा, हमारी पीड़ा है। मानवीय सुख और शांति, हमारी सुख और शांति है। इसलिए ये हमारे स्वार्थ के लिए हैं और हमें अपनी रोजी-रोटी कमानी चाहिए, कपड़े पहनने चाहिए। यही दरद, यही इच्छा जब विस्तृत और व्यापक होकर के इतने असीम हो जाते हैं कि जो खुराक हमको जरूरी है, वह सबको मिलनी चाहिए। पैसे की जो जरूरत हमको है, वह सबको मिलनी चाहिए और यही विद्या जो हमको जरूरी है, सबको मिलनी चाहिए। यही सुख जो हमको जरूरी है, सबको मिलना चाहिए।

मित्रो! जब ये भावनाएँ हमारे भीतर आ जाती हैं, तो हम योगी हो जाते हैं और भगवान से जुड़ जाते हैं। यही भावनाओं की प्रतिक्रिया लौटकर के हमारे पास आ जाती है और हम भगवान हो जाते हैं। भगवान क्या है? भगवान मित्रो! प्रतिध्वनि है और प्रतिच्छाया है। भगवान और कुछ नहीं है, वह प्रतिध्वनि और प्रतिच्छाया है। जैसे हमारे विचार होते हैं, जैसी हमारी भावना होती है, उसी की प्रतिक्रिया, प्रतिध्वनि गूँज करके हमारे पास आ जाती है। भगवान के जवाब ठीक वही होते हैं, जो हमारे जवाब होते हैं।

प्रतिध्वनि है भगवान

भगवान से जब हम यह कहते हैं कि अमुक चीज चाहिए, अमुक चाहिए। निकालिए, हमें बेटा दीजिए, लाइए हमको पैसा दीजिए। लाइए हमको ये दीजिए, लाइए हमको वो दीजिए। लाइए हमको नौकरी में तरक्की कराइए। लाइए हमारी बीमारी अच्छी कीजिए। यह सारी-की-सारी बातें जो हम कहते हैं, ठीक उन्हीं की प्रतिध्वनि इस अंतरिक्ष में से होकर के हमारे पास चली आती हैं और हमसे ये पूछती हैं कि लाइए, आपके पास पैसा कहाँ है? हमको दीजिए। आपके पास शरीर-श्रम कहाँ है? हमको दीजिए। आपके पास नौकरी में तरक्की कहाँ है? नहीं साहब! हमारी नौकरी में तरक्की कराइए। हमको पैसे की जरूरत है, हमारी सहायता कीजिए। हमको संतान की जरूरत है और वह भगवान की संतान जैसी होनी चाहिए। लाइए हमको संतान दीजिए।

मित्रो! यह कौन कहता है? भगवान कहता है। किससे कहता है? उस माँगने वाले से कहता है। माँगने वाले में जद्दोजेहद बराबर बनी रहती है और ऐसी बनी रहती है, जैसे कि दाराशिकोह और उसके भाई में बनी रहती थी। दारा और उसका भाई दोनों ही यही कहते थे कि हमको उम्र चाहिए और राज्य चाहिए। दोनों भाइयों में जद्दोजेहद होने लगी और लड़ाई होने लगी। लड़ाई में बड़े भाई ने, छोटे भाई का सिर कटवा दिया और सिर कटवा करके थाली में रखकर मँगवा लिया। हम और हमारा भगवान दाराशिकोह और औरंगजेब हैं और दोनों बैठे हैं कि राज्य हमको चाहिए और दौलत हमको चाहिए। हम कहते हैं कि दौलत हमको चाहिए और भगवान कहते हैं कि तेरी दौलत हमको चाहिए। तेरे पास क्या है? निकाल और हम कहते हैं कि तेरी दौलत कहाँ है? निकाल, दे हमको। भगवान कहता है कि निकाल तेरे पास कहाँ है? हम दोनों अपने-अपने चाकू लिए हुए हैं, तलवार

लिए हुए हैं, छुरे लिए हुए बैठे हैं। कब किसका सिर काट डालें और कब किसका खातमा कर डालें।

लेकिन मित्रो! जब यह प्रतिध्वनि, यह प्रतिक्रिया बदल जाती है, उस क्षण जब हम भगवान से यह कहते हैं कि हमारी सारी चीजें तुम्हारी हैं। हमारी भावना तुम्हारी है और हमारा धन तुम्हारा है। हमारा सब कुछ तुम्हारा है। हमारे पास जो कुछ भी है, सब तुम्हारा है और तुम्हारे लिए है। यह विचार जिस क्षण हमारे मन में आ जाता है, तो हमारी लड़ाई का मोर्चा बदल जाता है और हमारी लड़ाई के लड़ने वाले शूरवीरों की शक्लें बदल जाती हैं। हमारी लड़ाई के लड़ने वाले शूरवीर राम और भरत जैसे हो जाते हैं।

रामचंद्र जी कहते थे कि भरत गद्दी तेरे लिए है। तुझे लेनी चाहिए। गद्दी पर तुझे बैठना चाहिए। मैं बड़ा हूँ, मैं तो जंगल में अभी रहूँगा। तू छोटा बच्चा, छोटा भाई है और तुझे ही गद्दी पर बैठना चाहिए? तू गद्दी पर बैठ। भरत कहते थे कि आप बड़े भाई हैं और आप पिता के तुल्य हैं, आपको ही गद्दी पर बैठना चाहिए। मैं तो आपका सेवक हूँ, मैं क्यों बैठूँगा? दोनों में खूब बहस हुई। फिर जीता कौन? धर्म जीता और योग जीता और हारा कौन? 'मैं' हार गया, 'अहं' हार गया। रामचंद्र जी वनवास को चले गए और भरत जी नंदगाँव में जाकर के उसी तरह साधुओं जैसा लिबास पहनकर भूमि पर सोने लगे और राम की तरह वनवासी जीवन जीने लगे। अयोध्या के सिंहासन पर राम जी की खड़ाऊँ रखकर के राजपाट चलाने लगे।

योग का सच्चा दर्शन

मित्रो! यह क्या हो गया? राम और भरत की कथा हम पढ़ते हैं, सुनते हैं। राम और भरत का चित्रकूट में मिलन हम पढ़ते हैं। छाती-से-छाती मिलाकर जब हम मिलते हैं, तो कितना आनंद आता है। सारी रामायण एक ओर और राम-भरत का मिलन एक ओर। जब गहराई से इसको पढ़ते हैं, तो हमको ऐसा आनंद आता है और मालूम पड़ता है कि आध्यात्मिकता का सार, रामायण का सारे-का-सारा सार उसी में रखा है। यह रामायण का न्यूक्लियस वहाँ है, केंद्र वहाँ है, जहाँ राम और भरत छाती-से-छाती मिलाकर मिलते हैं। ऐसा आनंद और कहीं नहीं आता। बार-बार मन करता है कि रामायण के प्रसंगों को पढ़ना चाहिए।

यह क्या हो रहा है? यह मैं योग की व्याख्या कर रहा हूँ। आप जिस उद्देश्य के लिए, जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए यहाँ आए हैं, उस उद्देश्य का नाम है—योग। हमने आपको योग सिखाने के लिए बुलाया है। आपने तो समाज की सेवा करना बता दिया और यज्ञ करना बता दिया। आपने योग करना कहाँ बताया? आप यकीन रखना, मैंने सचमुच योग बताया है। झूठ वाले योग बताने वालों में से मैं नहीं हूँ, ताकि मैं आपको तरह-तरह के खेल-खिलौने हथेली पर देकर के यह कहूँ कि देख बेटा, चंद्रमा मँगा दिया। मुझे लक्ष्मी जी मँगवा दीजिए। अच्छा बेटा! मैं तुझे लक्ष्मी जी मँगा दूँगा।

तो गुरुजी! कब देंगे? कल सवेरे दे दूँगा। आज शाम को लक्ष्मी जी को मँगा लूँगा और वह सवेरे ही आ गया, लाइए लक्ष्मी जी दे दीजिए। हाँ बेटे! ले लक्ष्मी जी। लक्ष्मी जी किसकी बनी है? दोनों तरफ हाथी बैठे हैं और बीच में लक्ष्मी जी बैठी हैं। दोनों हाथी लक्ष्मी जी के ऊपर पानी चढ़ा रहे हैं। लक्ष्मी जी कमल के फूल के ऊपर बैठी हैं। ले बेटा, ले जा लक्ष्मी जी को। दो आने की खरीद करके लाए हैं, ले जा। गुरुजी! ये कैसी लक्ष्मी जी हैं? ये तो बिरला के बराबर भी धनवान नहीं बना सकीं और टाटा के बराबर भी नहीं और मफतलाल के बराबर भी नहीं बना सकीं। ये कैसी लक्ष्मी जी हैं? बेटे, जैसी तैने माँगी थीं, वैसी लक्ष्मी जी मैंने दे दीं। नहीं साहब! हमको असली लक्ष्मी दीजिए और हमको बिरला, टाटा तो बना ही दीजिए। आपने यह क्यों दे दिया? बेटे! यह बच्चों का खिलौना है। तू भी तो खिलौना ही माँग रहा था, सो मैंने तेरे हाथ में खिलौना थमा दिया। नहीं गुरुजी! हमको तो योग बता दीजिए। देख बेटा, अभी बताते हैं। नाक बंद कर-खोल, लंबा-लंबा श्वास ले, निकाल—बस योग आ गया। नहीं बेटे, यह तो योग नहीं हुआ।

भावनाओं का परिष्कार है योग

मित्रो! योग ऐसे नहीं बनता है। नाक में कहीं योग रखा है। नहीं साहब! हवा खींचूँगा और निकालूँगा। बिलकुल पागल आदमी है। नाक की हवा में कहाँ है योग? नाक में तो कफ भरा पड़ा है। नहीं साहब! मैं तो नाक से योग करूँगा। बेटे, नाक में योग नहीं है, तो फिर कहाँ है? योग, मित्रो! भावनाओं में है। विचारणा में है। भावनाओं का और विचारणाओं का परिष्कार करना वास्तव में, असल में यही योग है। आपको जब कभी भी यह बात समझ में आ जाए, चाहे आज आए, चाहे हजारों वर्षों बाद आए। योग का

मतलब कभी भी आपको जानना पड़े, समझना पड़े तो एक ही दिशा आपको मालूम पड़ेगी और एक ही बात आपको मालूम पड़ेगी कि योग का अर्थ दो तत्त्वों का जुड़ना है अर्थात चेतन तत्त्वों का जुड़ना, एकाकार होना। जड़ चीजों की तो मैं नहीं कहता। जड़ चीजों की तो एक भी अलग हस्ती बनी रहती है, पर चेतन जब कभी भी मिलेगा, तो वे दोनों एक हो जाएँगे। एकदूसरे में विलय हो जाएँगे, फिर दोनों की हस्ती कभी अलग रह ही नहीं सकती। हाइड्रोजन गैस और ऑक्सीजन गैस जब कभी भी आपस में मिलेंगी, तो पानी बन जाएँगी और दोनों की शक्ल बदल जाएगी। कुछ और ही बन जाएगी।

मित्रो! मनुष्य और भगवान जब कभी भी मिलेंगे, तो मनुष्य, मनुष्य रह ही नहीं सकता और भगवान, भगवान रह ही नहीं सकता। फिर मनुष्य और भगवान दोनों जब मिल जाएँगे, तो हम भी भगवान बन जाएँगे। देवता बन जाएँगे और हम संत बन जाएँगे, ब्राह्मण बन जाएँगे। इससे कम में हमारा गुजारा हो ही नहीं सकता। इससे कम हमारी हस्ती रह ही नहीं सकती। भक्त और भगवान दो अलग रह ही नहीं सकते। मित्रो! मैं योग की बात कह रहा हूँ। चेतन चीजों को जब आप मिला देंगे, तो वे फिर किस तरीके से अलग रह जाएँगी। गंगाजल और यमुनाजल मिला दीजिए, दोनों एक ही हैसियत के हो गए। क्यों? क्योंकि आपने दोनों को मिला दिया। अब आप अलग कर दीजिए न, गंगाजल और यमुनाजल को? कहाँ अलग हो सकते हैं? आपने उन्हें मिला जो दिया। अब वे अलग नहीं हो सकते। दोनों एक हो गए। भगवान के साथ जब जीवात्मा मिल जाएगा, तो फिर दोनों एक हो जाएँगे। दो अलग रह नहीं सकते। योग करने की शिक्षा इसीलिए मैं आपको दे रहा था।

कौन है भोगी, कौन है योगी?

मित्रो! आपको न केवल भावनाओं की दृष्टि से, बल्कि क्रियाओं की दृष्टि से भी असल में योगी होना चाहिए। इसीलिए मैं आपको योगी बनाना चाह रहा हूँ। मेरा असली लक्ष्य आपको योगी बनाना है। योगी बनने के लिए आपको अपनी भूमिका भोगी से हटा देनी पड़ेगी; क्योंकि योगी और भोगी, दोनों एकदूसरे की भिन्न दिशाएँ हैं। भोगी वह है, जो माँगता रहता है और चाहता रहता है। जरूरतमंद बनना चाहता है, मालदार बनना चाहता है और संपन्न बनना चाहता है, अमीर बनना चाहता है। उस आदमी का नाम क्या है? भोगी है। भोगी से भिन्न प्रकार का स्तर जो है, वह क्या है? उसका नाम योगी है।

योगी भगवान के लिए समर्पित होता है और भोगी भगवान को अपने लिए समर्पित कराना चाहता है। वह भगवान से तरह-तरह की ख्वाहिशें और तरह-तरह की फरमाइशें पेश करता रहता है। भगवान के पास कोई बल है, शक्ति है और ताकत है, सो अपने लिए माँगता रहता है। उसका नाम भोगी है। योगी उस आदमी का नाम है, जो माँगता नहीं है; बल्कि भगवान से यह कहता है कि हमारे पास जो चीजें हैं, सो हम आपको सब देंगे। ये चीजें आपकी हैं। बस, मूलत: मनोवृत्ति में इतना फरक है।

मित्रो! वास्तव में एक मनोवृत्ति का नाम योग है और दूसरी मनोवृत्ति का नाम भोग है। अन्यथा जिंदा तो आपको भी रहना पड़ता है और हमको भी रहना पड़ता है। योगी को भी रहना पड़ता है और संत को भी रहना पड़ता है। अनाज तो आप भी खाते हैं। अनाज तो संत भी खाते हैं। कपड़ा आप पहनते हैं। संत छाल पहनता है, कंबल पहनता है और मृगछाला पहनता है। शरीर को वह भी ढकता है। शरीर को ढके बिना किसका काम चला है? किसी का भी नहीं चला है। खाए बिना न आपका काम चला है और न उनका काम चला है। शरीर-निर्वाह की क्रियाएँ तो मित्रो! एक-सी ही होती हैं। क्या योगी की, क्या भोगी की? सबको अपना पेट भरना पड़ता है। ठीक है आपने गेहूँ से भर लिया, योगी ने मक्का से भर लिया; पर अन्न तो उसको भी लेना पड़ा। शरीर का निर्वाह करने के लिए सोना आपको भी पड़ता है और संत को भी सोना पड़ता है। आप पलंग पर सो जाते हैं और वह जमीन पर पत्ते-घास बिछाकर सो जाता है। बात तो एक ही हो गई न। उसमें और आप में फरक कहाँ रहा? जीवन-निर्वाह करने की क्रिया और जीवनयापन करने में योगी और भोगी में कुछ खास फरक नहीं होता। विचार करने की शैली में फरक होता है। सोचने के तरीके में फरक होता है। आदमी सोचता है कि भगवान का नाम लेकर के, पूजा करके वह हमारे वश में आ जाएगा, हमारे काबू में आ जाएगा। बेटे, यह उसका अज्ञान है।

मित्रो! मैं आपसे क्या कह रहा था? मैं आपको योगी बना रहा था और यह कह रहा था कि आप अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा को कम कर दीजिए और यह करना शुरू कर दीजिए कि हमको शरीर मिला है, तो शरीर का निर्वाह करने

के लिए हम परिश्रम करेंगे। अपनी कमाई से ही हम अपना पेट भरेंगे। यह हमारा ऑटोमेटिक शरीर है। हमको किसी से माँगने की, किसी के आगे हाथ पसारने की जरूरत क्या है? हमको भगवान ने हाथ दिए हैं, कलाइयाँ दी हैं। हम जमीन में लात मारेंगे और पानी निकाल लेंगे। अपनी कलाइयों से मेहनत करेंगे और रोटी खा लेंगे। शरीर-निर्वाह के लिए आपके ऊपर यह एक छोटे से बगीचे की जिम्मेदारी दी है। इसके लिए आपको अपने फर्जों को पूरा करना चाहिए। कुटुंब, परिवार जो भी है, उसको शिक्षित बनाना आपका काम है। उसको संस्कारवान बनाना, स्वावलंबी बनाना आपका काम है, बस, उससे आगे नहीं। उससे आगे जो भी कदम आप उठाएँगे, तो परिवार के साथ अत्याचार कर रहे होंगे। इन लोगों को खुश करने के लिए, उनकी इच्छानुसार चलने के लिए अगर आपने कदम बढ़ाए, तो मित्रो! आपकी दुर्गति होना सुनिश्चित है।

मित्रो! आप सबको खुश नहीं रख सकते, तो फिर किसे खुश करना चाहिए? एक भगवान को खुश करना चाहिए और एक अपनी अंतरात्मा को खुश करना चाहिए। इन दो के अलावा किसी तीसरे को खुश करने की जरूरत नहीं है। आप इन दो को खुश कीजिए; क्योंकि आगे जो आपको राह पार करनी है, मंजिल पार करनी है, वह केवल भगवान के सहारे पार करनी है और अपनी जीवात्मा के सहारे पार करनी है। मिलाना तो इन दोनों को ही है न। दुनियावालों को तो नहीं मिलाना है। मित्रो! इसीलिए मैंने आपको योगी बनाने के लिए बुलाया है, ताकि अपने आप को आप भगवान में समर्पित कर दें। उसके लिए क्या करना पड़ेगा? वही, जो मैंने आपसे पहले कहा और फिर कहता हुआ चला जाऊँगा कि आप अपने आप की सफाई कीजिए। अपने मन की मलिनताओं की सफाई कीजिए। मन की मलिनताओं की सफाई का मतलब साबुन से साफ करना नहीं है। नेति, धौति और गंगा जी में नहाना नहीं है, वरन वे कषाय, कल्मष जो आपके ऊपर लोभ के रूप में, मोह के रूप में, वासना-तृष्णा के रूप में हावी हो गए हैं, सवार हो गए हैं, आपको उन्हीं की सफाई करनी है और किसी की सफाई नहीं करनी है।

मित्रो! शरीर के धोने न धोने से भगवान नाराज नहीं हो सकते। भगवान जी जब भी आपसे नाराज होंगे और जब कभी भी नाखुश होंगे, जब आपके मन के ऊपर मलिनताएँ छाई रहेंगी। योग इसी आत्मशोधन का, आत्मपरिष्कार का नाम है। मैंने आपको यही सिखाया कि आपको योगी बनना चाहिए और वह योगाभ्यास करना चाहिए; जिसमें कि आपकी अहंता, जिसमें कि आपकी स्वार्थपरता, जिसमें आपके लोभ का निराकरण होता हो, समाधान होता हो। इसके लिए जो कर्मकांड बताए, आत्मशोधन की प्रक्रियाएँ बताईं, आत्मविस्तार की प्रक्रियाएँ बताईं, वह सारा-का-सारा योगाभ्यास ही है और वह भावनात्मक योग है। आपको इसे ही सीखना है और जीवन में धारण करना है।

आज की बात समाप्त

॥ ॐ शांतिः ॥

यमदूत और देवदूत मृतकों की जीवनगाथा पूछकर स्वर्ग, नरक में ले जाते थे। एक साधु के पास वे पहुँचे तो वे बोले—''मैं भरी जवानी में संन्यासी हो गया और जप-तप करने लगा। यहाँ तक कि छोटे-छोटे बच्चे, पत्नी तथा माता के रोने-बिलखने तक की परवाह नहीं की। ऐसी है मेरी भक्ति।'' उस साधु को यमदूतों ने नरक पहुँचा दिया। धर्मराज ने उनके कर्मों की समीक्षा करते हुए कहा—''कर्त्तव्यों का परित्याग करके कोई भक्ति नहीं हो सकती।'' वस्तुतः कर्त्तव्य सर्वोपरि है। भगवद्भक्ति उसी का एक अंग है। आश्रम कोई भी हो तथ्य यही रहेगा।

विश्वविद्यालय परिसर से –177

अंतरराष्ट्रीय उपलब्धियों का केंद्र बनता देव संस्कृति विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने शिक्षण-प्रक्रिया के साथ-साथ रचनात्मक और अन्य विशेष गतिविधियों के माध्यम से एक खास मुकाम और अनेकों ऐसी उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली हैं, जिन पर इस परिसर से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को गर्व होना स्वाभाविक है। भविष्य में जब भी इतिहास लिखा जाएगा तो इक्कीसवीं सदी के साथ प्रारंभ हुई इस परिसर की यात्रा और इसके महान उद्देश्यों के लिए संचालित उपक्रमों को, विश्वमानवता के कल्याण-विकास-उत्थान के लिए चलाए गए सर्वोत्तम अभियान के रूप में लिखा जाएगा।

परमपूज्य गुरुदेव के दिए गए विचारों, सिद्धांतों और सूत्रों को आधार बनाकर यह परिसर आधुनिक विश्व पटल पर मानवीय उत्थान एवं उत्कर्ष की नई इबारत लिखने जा रहा है। विश्वविद्यालय परिसर की प्रत्येक छोटी या बड़ी गतिविधियों के पीछे संस्कृति, समाज और राष्ट्रनिर्माण के लिए प्रतिबद्धता, संकल्प और प्रेरणाओं का बीजारोपण रहा है।

इसी शृंखला में विगत दिनों एकता दिवस के अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में भारत सरकार और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के निर्देशन के अनुरूप राष्ट्रीय एकता दिवस कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस 'रन फार यूनिटी' कार्यक्रम को प्रात: सात बजे विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति श्री शरद पारधी एवं कुलसचिव श्री बलदाऊ देवांगन ने हरी झंडी दिखाकर प्रारंभ किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में स्थित शहीद स्मारक दीवार के समक्ष प्रज्ञेश्वर महाकाल के प्रांगण में सैकड़ों विद्यार्थियों, आचार्यों एवं अधिकारियों ने एकत्रित होकर इस दौड़ में भागीदारी की। यह दौड़ राष्ट्रीय एकता के प्रेरक उद्घोषों को करने के साथ हरिपुर कलां से होकर शांतिकुंज आश्रम पहुँची। विद्यार्थियों में देशप्रेम की इस भावना को देखकर जगह-जगह पर लोगों ने उनका उत्साहवर्द्धन किया उनके साथ देशप्रेम के नारे भी लगाए।

'रन फार यूनिटी' के समापन अवसर पर विश्वविद्यालय के कुलपति श्री शरद पारधी जी ने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा कि आज ऐसी युवा पीढ़ी को गढ़ने की आवश्यकता है, जो एकता के महत्त्व को स्वयं भी समझे और दूसरों को समझाने में भी सफल हो। ऐसे आयोजनों से देश के युवाओं में राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान की भावना और राष्ट्रीय एकता की जिम्मेदारी का संदेश पहुँचता है।

उन्होंने उपस्थित सभी विद्यार्थियों को देश की एकता, अखंडता, संप्रभुता और सुरक्षा में सहयोग का संकल्प दिलाया। कुलसचिव श्री बलदाऊ देवांगन जी ने कविता के माध्यम से सरदार पटेल के महान व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला और आह्वान किया कि सरदार पटेल की 144 वीं जयंती के अवसर को उनके व्यक्तित्व को जानने, समझने और प्रेरणाएँ ग्रहण करने वाले दिवस के रूप में मनाना चाहिए।

विश्वविद्यालय परिसर के अंतरराष्ट्रीय फलक भी निरंतर नई-नई उपलब्धियों के साथ विस्तृत होते जा रहे हैं। श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के आध्यात्मिक मार्गदर्शन और प्रतिकुलपति जी के प्रतिभासंपन्न नेतृत्व ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नई ऊँचाई प्रदान की है। प्रतिकुलपति जी की विगत पंद्रह दिवसीय यूरोप यात्रा भी इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज और गायत्री परिवार के लिए गौरवान्वित करने वाली व अनेक तरह से उपलब्धिपूर्ण रही है।

उल्लेखनीय है कि 'वन यंग वर्ल्ड' नामक संस्थान द्वारा पूरे विश्व से चयनित 190 देशों के दो हजार युवाओं का एक विशेष सम्मेलन लंदन के रॉयल अल्बर्ट हॉल में आयोजित किया गया था। इस विशिष्ट आयोजन में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी को विश्व की युवा प्रतिभाओं का मार्गदर्शन करने हेतु विशेष रूप से आमंत्रित किया गया। भारत देश का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रतिकुलपति जी ने 190 देशों के युवाओं को भारतीय

संस्कृति एवं मानव मूल्यों से परिचित कराते हुए मानवीय उत्कर्ष का पाठ सिखया।

प्रतिकुलपति जी ने अपने संबोधन में पूज्य गुरुदेव के सूत्र 'मानव मात्र एक समान' एवं 'एकता-समता-शुचिता-ममता' सूत्रों को आधार बनाते हुए विश्वभर से आए एवं वहाँ उपस्थित युवाओं को संदेश दिया कि विश्व के किसी भी कोने में हमारा जन्म हुआ हो, पर हम सब एक ही ईश्वर के पुत्र हैं। उस परमपिता ने हमें इस दुनिया में कुछ विशेष कार्य के लिए भेजा है। हम सभी का यह पावन कर्त्तव्य है कि स्वार्थ-संकीर्णता से ऊपर उठकर समाज, राष्ट्र और विश्व में छाए संकटों के समाधान के लिए कार्य करें।

प्रतिकुलपति जी ने कहा कि आज मानवता पर अनेक संकट मँडरा रहे हैं। ऐसे में युवाओं को आगे बढ़कर जिम्मेदारी लेने और समाधान का हिस्सा बनने की आवश्यकता है। वर्तमान प्रयासों में बाहरी संवादों और समाधानों पर ऊर्जा केंद्रित करने के साथ-साथ भीतरी विचारों और भावनाओं के परिवर्तन-रूपांतरण को भी उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए। मानवीय साहचर्य और सद्भावना के आधार पर सभी धर्म, पंथ, संप्रदायों को एकता के सूत्र में पिरोया जाना आवश्यक है।

इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने अखिल विश्व गायत्री परिवार के आध्यात्मिक सिद्धांतों और विभिन्न सृजनात्मक, कल्याणकारी अभियानों की भी जानकारी प्रदान की। विश्व मंच के इस विशेष कार्यक्रम में ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान पादरी निकिटस, वेस्टमिंस्टर के प्रधान पादरी कार्डिनल विन्स निकोलस, कामनवेल्थ के संयुक्त यहूदी संघ के प्रमुख रबाई मान एफ्राइम मिरविस, नाइजीरिया चर्च के प्रधान पादरी डॉ० जे० आई० फिरोन, इमाम खोइए, इसलामिक केंद्र के प्रमुख इमाम ए० एस० एफ० हुसैन और अजीज हाफिज आदि उपस्थित रहे। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथियों के रूप में यॉर्क की रानी मेगन मर्केल, यूके के प्रधानमंत्री व लंदन के मेयर भी उपस्थित थे।

यूरोप प्रवास के दौरान प्रतिकुलपति जी ने लिथुआनिया देश का भी दौरा किया, जिसकी अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ रहीं। उनके माध्यम से विधिवत् रूप से लिथुआनिया में अखिल विश्व गायत्री परिवार की एक शाखा की स्थापना की गई। इस अवसर पर आयोजित दीपयज्ञ में लिथुआनिया के अनेक शहरों से पधारे सैकड़ों परिजनों ने हर्ष, उल्लास से भागीदारी की। उल्लेखनीय है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर के 12 विद्यार्थी शैक्षणिक गतिविधियों के अंतर्गत लिथुआनिया के विभिन्न शहरों में शिक्षारत हैं; जिनमें भृगु बग्गा, रुद्राक्ष, कार्तिकेय, गौरव, चित्रा, शिल्पी, स्वर्णिम, तेजस्वी, प्राची, रुचि एवं विशु ने गायत्री परिवार की नवीन शाखा की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लिथुआनिया देश के इस प्रवास में प्रतिकुलपति जी ने अनेक क्षेत्रों की महत्त्वपूर्ण प्रतिभाओं से मुलाकात की व साथ ही क्लाईपेडा विश्वविद्यालय के साथ एक महत्त्वपूर्ण अनुबंध पर हस्ताक्षर भी किए।

प्रवास के इसी क्रम में प्रतिकुलपति जी ने यू० के० स्थित ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के सेंट बेनेट कॉलेज का दौरा भी किया और उसके अध्यक्ष प्रो० रिचर्ड कूपर से मुलाकात की। इस मुलाकात के परिणामस्वरूप ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में फेथ इन लीडरशिप का एक केंद्र स्थापित होगा; जिसमें देव संस्कृति विश्वविद्यालय को भी सहयोगी संस्थान के रूप में आमंत्रित किया गया है। इसके अंतर्गत परम श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी को संरक्षक व प्रतिकुलपति जी को सलाहकार परिषद् के सदस्य के रूप में आमंत्रित किया गया है। इस अवसर पर गायत्री परिवार के युवाओं के लिए छोटी अवधि के विशिष्ट पाठ्यक्रम तैयार किए जाने पर भी गहन चर्चा की गई।

प्रतिकुलपति जी के इसी दौरे में लंदन स्थित सेंटर फॉर झेन स्टडीज में उन्हें पूज्य गुरुदेव व उनकी विचारधारा पर व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया गया, जिसमें वहाँ कार्यरत सभी झेन शिक्षक उपस्थित रहे। उल्लेखनीय है कि अगस्त 2020 में 20 झेन शिक्षकों का एक दल शांतिकुंज व देव संस्कृति विश्वविद्यालय भ्रमण हेतु आने वाला है।

इसी क्रम में फाइन आर्ट्स एंड डिजाइन यूनिवर्सिटी, स्लोवाकिया के कुलपति से भी प्रतिकुलपति जी की मुलाकात हई और एक विशेष अनुबंध पर उनके साथ हस्ताक्षर भी हुए। परमपूज्य गुरुदेव के विचार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के उद्देश्यों को वैश्विक मंच तक पहुँचाने एवं विस्तृत बनाने की दृष्टि से प्रतिकुलपति जी का यह विदेशी प्रवास अनेक महत्त्वपूर्ण और लाभकारी उपलब्धियों से परिपूर्ण रहा है।

इन्हीं दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में चीन से विद्यार्थियों का एक दल देव संस्कृति विश्वविद्यालय

में भारतीय संस्कृति, योग, आयुर्वेद एवं वैकल्पिक चिकित्सा जैसी विधाओं में प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु आया। उल्लेखनीय है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय का अनुबंध चीन के अनेक योग संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों के साथ है, जहाँ के विद्यार्थी नियमित क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय आते रहते हैं। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने उन विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा से अवगत कराया एवं उन्हें परमपूज्य गुरुदेव की विश्वव्यापी योजना का अंग बनने के लिए प्रेरित भी किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के अंतरराष्ट्रीय फलक में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बाल्टिक सेंटर की स्थापना की रही है; जिसका उद्देश्य बाल्टिक देशों, यथा—लाट्विया, लिथुआनिया, एस्टोनिया आदि के साथ मिलकर भारत की संस्कृति का प्रचार-प्रसार करना रहा है। इस क्रम में लिथुआनिया की प्राचीन संस्कृति को जीवित और जाग्रत रखने का प्रयास कर रहे रोमोवा समुदाय के सदस्यों ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण किया। इस भ्रमण दल की अध्यक्षता वहाँ की मुख्य पुजारी श्रीमती इनिया ने की; जिन्होंने इस भ्रमण को अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बताया और यह कहा कि वे स्वयं को भारतीय संस्कृति का वंशज मानती हैं।

इस अवसर पर लिथुआनिया संसद के सांसद श्री गिनतारस सांगेला भी उपस्थित रहे। उनके सम्मान में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के हॉल में एक सम्मान समारोह आयोजित किया गया; जिसमें देव संस्कृति विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर शिवनारायण प्रसाद एवं लिथुआनियाई संगीत अकादमी के प्रोफेसर मेन्दूगस ने मिलकर एक प्रस्तुति दी। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने सभी उपस्थित अतिथियों को परमपूज्य गुरुदेव द्वारा रचित समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान पुस्तक एवं उसके भीतर निहित विचारधारा से अवगत कराया और उन्हें पुनः पधारने का आमंत्रण प्रदान किया।

बाल्टिक सेंटर द्वारा रीगा तकनीकी विश्वविद्यालय, लाट्विया के अंतरराष्ट्रीय संबंध विभाग की निदेशक डॉ० जेन पुरलोरा एवं उपनिदेशक डॉ० लौरा इस्टाले को भी आमंत्रित किया गया। ज्ञातव्य है कि रीगा तकनीकी विश्वविद्यालय के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय का एक महत्त्वपूर्ण अनुबंध है; जिसको विगत दिनों भारतीय उपराष्ट्रपति के बाल्टिक देशों के दौरे में सबसे महत्त्वपूर्ण अनुबंध के रूप में प्रस्तुत किया गया था।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की अन्य अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों के अंतर्गत 30 देशों से आया हुआ 120 विद्यार्थियों का विशेष दल देव संस्कृति विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति, योग, अध्यात्म एवं प्राच्य विद्याओं पर प्रशिक्षण प्राप्त करने देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचा एवं प्रतिकुलपति से मुलाकात की। इस अवसर पर उन्हें विश्वविद्यालय के दर्शन, विचार एवं परमपूज्य गुरुदेव के चिंतन से अवगत कराया गया। सभी विद्यार्थी देव संस्कृति विश्वविद्यालय से अभिभूत होकर लौटे।

इसी क्रम में ईरान से आए चिकित्सकों और विद्यार्थियों के एक दल ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचकर श्रद्धेय कुलाधिपति जी एवं प्रतिकुलपति जी से मुलाकात की। श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने ईरान को भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग बताया और उन सभी विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय का अंग बनने के लिए प्रोत्साहित किया। ईरान से आए सभी अभ्यर्थी देव संस्कृति विश्वविद्यालय से अद्भुत प्रेरणा लेकर वापस लौटे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की इन्हीं अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों का विस्तार दक्षिण अमेरिका में भी होता दिखा; जब वहाँ के विभिन्न विश्वविद्यालयों के 40 विद्यार्थी देव संस्कृति विश्वविद्यालय प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए पहुँचे। कोलंबिया, वेनेजुएला एवं इक्वाडोर से आए हुए ये विद्यार्थी वहाँ भारतीय प्राच्य विद्याओं पर प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। प्रतिकुलपति जी ने उन्हें गायत्री मंत्र एवं उसमें निहित विशेषताओं विषय पर एक प्रेरणात्मक उद्बोधन दिया और उनमें से अनेक विद्यार्थी दीक्षित होकर वापस लौटे।

विश्व के अनेक देशों में कार्य करने के साथ-साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय दक्षिण एशिया के समस्त देशों के साथ भी गंभीरता के साथ कार्य कर रहा है। इसी क्रम में त्रिभुवन विश्वविद्यालय के साथ एक महत्त्वपूर्ण अनुबंध देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित किया गया; जिसके माध्यम से वहाँ के विद्यार्थियों को पौरोहित्य कर्मकांड, योग एवं वैकल्पिक चिकित्सा का प्रशिक्षण देव संस्कृति विश्वविद्यालय में प्रदान किया जाएगा। ❑

अपनों से अपनी बात

एक घंटा नित्य समय; एक अंश नित्य दान

विभूतिवान, संकल्पवान, प्राणवान आत्माओं की परीक्षा चुनौतीपूर्ण समय में होती है। जब समय सामान्य हो तो अपने शौर्य-पराक्रम-साहस की दुहाई देने में कोई पीछे नहीं रहता, परंतु उन प्रवंचनाओं का सही आकलन अप्रत्याशित समय चक्र में किया जाता है। चिकित्सा की पढ़ाई पूरी कर लेने मात्र से कोई चिकित्सक नहीं कहलाता, वरन पीड़ितों का कष्ट निवारण कर सकने की क्षमता, उसकी दक्षता का सम्यक उद्घोष करती है। गाड़ी चलाने का नकली लाइसेंस कुछ पैसे घूस देकर भी मिल जाता है; परंतु उस कौशल की परीक्षा गाड़ी के स्टेयरिंग के पीछे बैठने पर ही हो पाती है। योग्यता का निर्धारण—कर्त्तव्य व दायित्व के कुशलतापूर्वक निर्वहन से होता है, कोरी बातें बनाने से नहीं।

वर्तमान समय अखण्ड ज्योति पाठक परिवार के प्रत्येक सदस्य से कुछ ऐसा ही कौशल दिखाने का आह्वान करता है। आज समय मात्र निजी साधना तक सीमित रहने का नहीं है, वरन वैश्विक नवनिर्माण के अपने मुख्य उत्तरदायित्व के निर्वहन का भी है। आज आवश्यकता हममें से प्रत्येक के एक कुशल संगठनकर्त्ता, सच्चे शिष्य, समर्पित साधक और उत्कृष्ट युगनिर्माता के रूप में विकसित होने की है।

अपने व्यक्तिगत उद्देश्यों को पूरा करने में तो हमने अपना अब तक जीवन लगाया ही है, अब आवश्यकता उच्च उद्देश्यों के लिए, लोक-मंगल के लिए अपनी क्षमताओं को होम देने की है। भजन की सार्थकता तभी है, जब हम मानवीय चेतना का आंतरिक स्तर ऊपर उठा पाने में सक्षम हो सकें अन्यथा जीभ की नोंक हिलाकर मंत्रों की कुछ गिनती पूरी कर देने मात्र से हम सृजनसेनानी नहीं कहे जा सकते।

सेवा किसी भी रूप में हो, श्रेष्ठ ही कही जाएगी, परंतु उसमें संभवतया उत्कृष्टतम सेवा मनुष्य के भावनात्मक नवनिर्माण द्वारा की जा सकती है। शास्त्रों के सम्मिलित कर्मकांड मिलकर उतना पुण्य नहीं दे पाते, जितना पीड़ितों की सेवा व पतितों के उत्थान के भाव को लेकर किए गए सत्कर्म दे जाते हैं। ईश्वर के अनुग्रह, आत्मसंतोष व लोक-सम्मान के अधिकारी भी इन्हीं शुभ कर्मों को करने वाले बनते हैं। अपनी प्रथम ज्योति जलाने से लेकर आज तक, अखण्ड ज्योति ने ऐसे ही सृजन-शिल्पियों को मार्गदर्शन व संरक्षण देने का कार्य किया है।

यह सौभाग्य ही कहा जाएगा कि अपने इस परिवार के प्रत्येक सदस्य से समय-समय पर जो अपेक्षा की गई है, वो उन्होंने पूरी भी की है। आत्मपरिष्कार के लिए निरत रहने वाले उपासकों का बृहत् समूह, परमार्थ व लोकोत्थान में जुट पड़ने वाले साधकों व आराधकों का एक बड़ा समुदाय इसी पत्रिका के पाठकवृंदों में से निकलकर आता रहा है।

इस तथ्य को कि सेवा ही मानवीय संभावनाओं का उत्कर्ष है—हममें से प्रत्येक ने माना है और यथासंभव अपनाया भी है। इस सत्य को भी हममें से प्रत्येक युगसेनानी जानता व मानता है कि जब तक मनुष्य की भावनात्मक शुद्धि न होगी; तब तक रोग-शोक, कष्ट-क्लेश, चिंता-परेशानियों के रूप में मनुष्य, आंतरिक व बाह्य रूप से उलझा, बेचैन रहेगा और इसीलिए आज हमें सम्मिलित रूप से जनमानस को उत्कृष्ट व परिष्कृत बनाने की आवश्यकता है।

लोक-शिक्षण करने के लिए व एक बृहत् समुदाय के आंतरिक नवनिर्माण के लिए अनेक लोग अनेक उपाय बता सकते हैं; परंतु उनमें से प्रभावी मात्र वही तरीके होने वाले हैं, जिन्हें परमपूज्य गुरुदेव इस अभियान की नींव डालते समय हमें बता गए थे। उनमें से पहला व महत्त्वपूर्ण सूत्र 'एक घंटा नित्य समय व एक अंश नित्य दान' का है। यों कहने को तो सूत्र वर्षों पुराना है; परंतु उसे आज सामाजिक संदर्भ में पुनः समझने व विकसित करने की आवश्यकता है।

युगांतकारी चेतना के उद्भव व उत्कर्ष के लिए एक मुख्य आवश्यकता समय के दान की है। हम यदि दिन के चौबीसों घंटे निजी स्वार्थ की पूर्ति में ही खरच कर डालें व लोक-मंगल हेतु एक घंटा भी न निकाल सकें तो जीवन तो जैसे-तैसे कट जाएगा; परंतु ईश्वर के दरबार में, पूज्य गुरुदेव के सम्मुख लज्जाजनक मुख लेकर ही खड़ा होना पड़ेगा।

लोगों को सिनेमा-सीरियल, मौज-मजा, जुआ-व्यापार के लिए आसानी से समय मिल जाता है; तो देश, समाज व संस्कृति के उत्थान के लिए दिन का एक घंटा, या हफ्ते का एक दिन या वर्ष का एक माह निकालने में किस जाग्रत आत्मा को संकोच होना चाहिए? भारतीय इतिहास में तो जीवंत आत्माओं के इस हेतु किए गए बलिदानों के उदाहरणों से पुस्तकें, ग्रंथ, शास्त्र भरे पड़े हैं तो क्या इतने छोटे से समय के दान के लिए आज अखण्ड ज्योति के परिजन आगे न आ सकेंगे?

प्रश्न उठता है कि जिनके हृदय में इस हेतु भाव उठता है, वे समय का उपयोग कैसे कर सकते हैं? ऐसे हुतात्मा, ऐसे सृजनशील यदि समूह में हों तो वे टोलियाँ बनाकर अपने क्षेत्र के लोगों के घरों पर क्रम से जाने का संकल्प ले सकते हैं। जिसका उद्देश्य उन परिवारों में भारतीय संस्कारों व उच्चस्तरीय विचारशीलता के बीज बोने का है।

उनके घरों पर जाकर उन्हें पूज्य गुरुदेव के युगसाहित्य से परिचित कराने का, उन्हें अखण्ड ज्योति का ग्राहक बनाने का, उनमें साधना-स्वाध्याय-संयम-सेवा जैसे सूत्रों के बीजारोपण का, उनके बच्चों को बाल संस्कारशालाओं का अंग बनाने का, व घर की महिलाओं को महिला मंडल का अंग बनाने का—ऐसे न जाने कितने ऐसे कार्य हैं, जो अपने समयदानी कार्यकर्त्ता दिन के एक घंटे में या हफ्ते के एक दिन में सहजता से संपन्न कर सकते हैं।

निस्स्वार्थ भाव से बिना किसी को उपदेश देने के भाव से यदि ये लोकोपयोगी बातें कही जाती हैं तो लोग ध्यानपूर्वक सुनते भी हैं व गतिविधियों का हिस्सा भी जोर-शोर से बनते हैं। इन प्रयासों का आधार आत्मीयतापूर्ण हो व इन्हें निरंतर जारी रखा जाए तो लोगों के भावनात्मक नवनिर्माण में देर नहीं लगती व देखते-देखते एक गंभीर परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगता है।

यह भी संभव है कि कुछ भाई-बहन, व्यक्तिगत स्वास्थ्यजन्य अथवा अन्य कारणों से घर-घर जा पाने की स्थिति में न हों तो ऐसे सभी स्वजन, अपने निकट के गायत्री शक्तिपीठ, प्रज्ञापीठ, ज्ञान मंदिर, चेतना केंद्र को जाग्रत व चैतन्य बनाने में समय का उपयोग कर सकते हैं। परमपूज्य गुरुदेव कहते थे कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति को अपने संपर्क में आने वाले लोगों को अच्छे उद्देश्य के लिए प्रेरित करना चाहिए। निकट के शक्तिपीठ, बुक स्टॉल, स्मृति भवन, गोशाला इत्यादि ऐसे कितने उपक्रम हो सकते हैं; जहाँ हमारे परिजनों के द्वारा दिया गया एक घंटा न जाने कितने भूले-भटकों को राह दिखाने के काम आ सकता है और जो शक्तिपीठ तक भी जा पाने की स्थिति में न हों वे अपने कार्यक्षेत्र को ही अपनी कर्मभूमि बना लें।

यदि गायत्री परिवार का हर चिकित्सक दिन में एक मरीज को, हर शिक्षक एक विद्यार्थी को, एक व्यापारी एक ग्राहक को सामान्य वार्त्तालाप के क्रम में पूज्य गुरुदेव के जीवन से, उनके साहित्य से परिचित कराने का कार्य करना शुरू करे तो न जाने कितनों तक नवनिर्माण की इस क्रांति को पहुँचाया जा सकता है। मन में संकल्प हो तो राह निकलते देर नहीं लगती, समय देने का भाव हो तो उसके उपयुक्त कार्य भी निकल आते हैं। इसी भाव के साथ अपने प्रत्येक परिजन को आगे आकर यह जिम्मेदारी लेने की आवश्यकता है।

जहाँ इतने लोगों का समन्वित श्रम लगेगा; वहाँ थोड़ी ही सही, पर धन की आवश्यकता भी आती है। प्रचार हेतु साहित्य योजना हो, बाल संस्कारशालाओं को चलाना हो या अन्य कोई कार्य करना हो—इस हेतु अपने एक अंश को लगाने की महत्ता भी समयदान जितनी ही है। सैनिक तैयार कर लिए जाएँ, पर उनके हाथ में बंदूक न हो; किसान हो, पर खेत जोतने को हल न हो; चिकित्सक हो, पर चिकित्सा के साधन-उपकरण न हों तो सारा पुरुषार्थ व्यर्थ चला जाता है।

इस हेतु अपनी आर्थिक क्षमता का एक अंश लगाना भी जरूरी है। एक रुपया प्रतिदिन यदि इस सदुद्देश्य के लिए निकाला जाए तो तीस रुपया प्रतिदिन बन पड़ता है। जो किसी के लिए भारी नहीं है। आज के इस महँगाई भरे युग में महीने में तीन चाय या 4 समोसों के अनुपात का खरच यदि लोक-मंगल के कार्यों में लगाया जाए तो क्या हर्ज है। श्रद्धा हो तो इतना दे पाना, हर व्यक्ति के बूते की बात है।

इस वर्ष के चैत्र नवरात्र के अवसर पर अखण्ड ज्योति पत्रिका अपने परिजनों से यह आशा करती है कि समयदान व अंशदान की पुनीत परंपरा का प्रण वे पुनः उठाएँगे व इसे बड़े-से-बड़े रूप में पूर्ण करके गुरु दक्षिणा के कर्त्तव्य का निर्वाह करेंगे। दिखने में यह बहुत छोटा-सा दायित्व प्रतीत होता है; परंतु यदि एक लाख भी सक्रिय कार्यकर्त्ता इस हेतु तैयार हो गए तो प्रत्येक दिन एक लाख

नए लोगों तक, नए घरों तक, नए व्यक्तियों तक पहुँचा जा सकेगा व देखते-देखते एक सामूहिक चेतना का नवनिर्माण संभव हो सकेगा।

इसका प्रतिफल कितना उत्कृष्ट व श्रेष्ठ होगा यह सोचकर ही अंतकरण उल्लसित हो उठता है। इसे महाकाल का निर्देश व परमपूज्य गुरुदेव व वंदनीया माताजी का साक्षात् संदेश मानकर प्रत्येक गायत्री परिवार सदस्य को आज से ही इस निमित्त जुट जाना चाहिए; ताकि मानवता में छाई अंधकार की छाया इस सामूहिक सत्प्रयास के प्रकाश से सदा के लिए परास्त की जा सके। ❑

सौंदर्य एक वरदान भी है एवं अभिशाप भी। वरदान तब होता है; जब वह अपनी विशेषता से प्रभावित लोगों को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे, उनमें सत्प्रवृत्तियाँ उभारे। अभिशाप उस समय बनता है; जब वह मानवीय कुत्सा को भड़काता है, व्यक्तिगत अहंकार को पोषित कर कुमार्गगामिता का पथ प्रशस्त करता है।

मिस्त्र की राजकुमारी क्लीयोपैट्रा एक ऐसी ही महिला थी, जिसे प्रकृति से मुक्तहस्त सौंदर्य की विभूति मिली थी। उसे देखकर ऐसा लगता था, जैसे साक्षात् कामदेव नारी तन में अपनी सभी विशेषताओं के साथ अवतरित हो गए हों। इतिहासकारों ने उसे अपने युग की सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय सुंदरी की उपाधि दी। किशोरवय से ही उसके सौंदर्य की ख्याति सर्वत्र फैलने लगी। अल्हड़ सामंत कुमारों, नवयुवकों की भीड़ उसके इर्द-गिर्द सदा भागती रहती थी। उसके माता-पिता तो बचपन में ही दिवंगत हो गए थे। अंकुश न रहने से उसकी उच्छृंखलता को बेलगाम होने की खुली छूट मिल गई। जितनी वह सुंदर थी, उससे भी अधिक उसे अपने रूप पर अहंकार था। उतनी ही अधिक वह महत्त्वाकांक्षी थी। थोड़ी समझदारी आते ही वह मिस्त्र की शासिका बनने के सपने देखने लगी। वह किसी भी कीमत पर अपनी मुराद पूरी करना चाहती थी। अपनी उद्धत महत्त्वाकांक्षा पूरी करने हेतु उसने क्रमशः अनेक सामर्थ्यवान नवयुवकों को अपना हथियार बनाया। इनमें से प्रत्येक उसके रूपजाल में कैद होकर स्वयं के व साम्राज्य के विनाश का कारण बनते चले गए। अंततः इस रूपसी ने सर्पदंश से आत्मघात कर लिया।

जितने दिन वह जीवित रही, रोम तथा मिस्त्र का शासनतंत्र एक झूले की तरह इधर-उधर झूलता रहा। कभी भी स्थायित्व नहीं आने पाया। क्लीयोपैट्रा वासना एवं महत्त्वाकांक्षा की आग में स्वयं मरी तथा अगणित लोगों को भस्मीभूत किया। उसे जो सौंदर्य का वरदान प्रकृति द्वारा मिला था, वह एक अभिशाप सिद्ध हुआ। एक ऐसा अभिशाप, जो रोम एवं मिस्त्र के पतन का कई दशकों तक कारण बना। उसका उदाहरण बताता है कि सौंदर्य के साथ यदि चरित्रनिष्ठा न जुड़ी हो तो वह उद्धत उत्पात के रूप में भड़कता व अनेकों के विनाश का कारण बनता है।

पावन चैत्र मास

चैत्र मास में संवत्सर का, बहुत श्रेष्ठ स्थान है॥
इसी माह नवरात्रि पर्व की, महिमा बहुत महान है॥

नौ दुर्गा नौ शक्ति रूप में,
आराधित की जाती है।
संकल्पित मानव की बुद्धि,
शांति और सुख पाती है॥
इसीलिए नवरात्रि साधना का इतना सम्मान है॥

जीवन चरित्र भगवान राम का,
मर्यादा सिखलाता है।
चलें राम के पदचिह्नों पर,
यह शुभ भाव जगाता है॥
चैत्र रामनवमी करती सत्कर्मों का आह्वान है॥

यही मास प्रभु वर्धमान की,
स्मृति लेकर आता है।
सत्य-अहिंसा और तपस्या,
का महत्त्व समझाता है॥
महावीर स्वामी की शिक्षा करती जग उत्थान है॥

चैत्र मास की गरिमा समझें,
जियें साधनामय जीवन।
आत्मशक्ति का हो संवर्द्धन,
स्वस्थ, निरोगी हो तन-मन॥
जिसकी सफल साधना उसका होता अभ्युत्थान है॥
चैत्र मास में संवत्सर का, बहुत श्रेष्ठ स्थान है॥

—शोभाराम 'शशांक'

'गायत्री चेतना केंद्र' का लोकार्पण समारोह मनखेड़-नाशिक (महाराष्ट्र)

अखण्ड ज्योति

(मासिक)

R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-02-2020

Regd No. Mathura-025/2018-2020

Licensed to Post without Prepayment

No: Agra/WPP-08/2018-2020

www.awgp.org

युगसृजेता शिविर, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भावी निर्धारणों एवं नवीन संकल्पों के साथ संपन्न

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक- डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष- 0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.- 09927086291, 07534812036,07534812037, 07534812038, 07534812039

ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org